वेदप्रकाश

[वैदिक सिद्धान्तों का प्रचारक मासिक पत्र]

वर्ष २२ अंक १] अगस्त १९७३ [वार्षिक मूल्य ३.००

सम्पादकीय

पं० श्री बिहारीलाल जी शास्त्री, काव्यतीर्थ आर्यजगत् के उज्ज्वल नक्षत्र और देदीप्यमान रत्न हैं। आप ने वाणी और लेखनी दोनों के द्वारा आर्यजगत् की सेवा की है। अपने व्याख्यानों द्वारा सहस्रों व्यक्तियों को आपने आर्यसमाज की ओर आकर्षित कर उन्हें आर्यसमाज का दीवाना बनाया है। शास्त्रार्थों में अनेक बार ईसाई, मुसलमान और पौराणिकों को चारों खाने चित्त कर आपने श्रोताओं के हृदयों पर वैदिकधर्म की सत्यता की धाक जमाई है। आपके लेखों और पुस्तकों को पढ़कर अनेक व्यक्ति उपदेशक बन गये।

१९६६ में पण्डितजी ने अपनी आयु के ७५ वर्ष पूरे किये। इस अवसर पर उनके कुछ हितैषियों और शुभचिन्तकों ने उनका सार्वजनिक अभिनन्दन करने का निश्चय किया। बाबू चन्द्र नारायण जी सक्सेना एडवोकेट, बरेली के संयोजकत्व में पण्डितजी का सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया। इस अवसर पर इष्ट-मित्रों व बन्धु-बान्धवों ने जो धनराशि पण्डितजी को भेंट की ये औघड़ दानी उस सब को आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश को समर्पित कर रिक्तहस्त लौट आये।

संस्थापक—श्री गोविन्दराम हासानन्द

सभा का कर्तव्य था कि आर्यजगत् के इस वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध एवं अनुभववृद्ध शास्त्रार्थ महारथी का सुन्दर अभिनन्दन ग्रन्थ तैयार कराती परन्तु सभाएँ या तो चुनाव के अखाड़े बनकर रह गई हैं या उनके जो अधिकारी बनते हैं उन्हें पद को लालसा अवश्य होती है, काम वे कुछ नहीं करते, दूर, बहुत दूर बैठे रहते हैं। क्या करना है, क्या नही इसकी कोई योजना ही उनके मस्तिष्क में नहीं होती। सामग्री पड़ी रही, ग्रन्थ नहीं छपा।

एक दिन पण्डितजी से इसी विषय पर चर्चा हो गई। मैंने पंडित जी से सारी सामग्री प्राप्त कर आर्य साहित्य के प्रसिद्ध प्रकाशक गोविन्दराम हासानन्द के संचालक श्री विजयकुमार जी को इस ग्रन्थ को छपवाने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर दी। फलस्वरूप अब यह ग्रन्थ पाठकों के हाथों में है।

इस संकलन में पन्द्रह लेख हैं। इनमें सैद्धान्तिक लेख भी हैं, विचारोत्तेजक लेख भी हैं और सामयिक लेख भी। अनेक बातें नवीन एवं अनूठी हैं जो पाठकों को पहली ही बार पढ़ने को मिलेंगी। अन्त में परिशिष्ठ के रूप में शास्त्रीजी के जीवन के सम्बन्ध में आर्यजगत् के मूर्द्धन्य विद्वानों एवं शास्त्रीजी के भक्तों एवं श्रद्धालुओं की श्रद्धाञ्जलियाँ हैं।

हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि जनता इस ग्रन्थ को हाथों-हाथ क्रय कर अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय देगी।

—जगदीश विद्यार्थी

शास्त्रीजी का परिचय

मुरादाबाद मंडलान्तर्गत पागवड़ा ग्राम में संवत् १९४७ विक्रमी में फाल्गुन शुदी तृतीया को शास्त्रीजी का जन्म हुआ। गौड़ ब्राह्मण भारद्वाज गोत्रिय त्रिगुणायत वंश में आप जन्मे हैं। इनके पूज्य पिताजी का शुभनाम था श्री पं० अयोध्याप्रसाद जी। दादा थे श्री बुद्धसेन। घर में खेती और लेन-देन का काम होता था।

प्रथम मुड़िया लिपि और लेन-देन सम्बन्धी गणित लाला सोहन-लाल जी से सीखा। पुनः पूज्य पंडित श्री लोकनारायणजी की सेवा में रहकर संस्कृत पढ़नी प्रारम्भ की। पं० लोकनारायणजी के सुपुत्र पं० श्री केदारलालजी से भी 'अमरकोश' तथा 'लघुकौमुदी' पढ़ी। पुनः पूज्य पं० श्री वैद्यनाथजी मुरादाबाद वालों की कृपा से श्री जवाहरलाल संस्कृत पाठशाला मुरादाबाद में प्रवेश मिला। यहाँ से प्रथमा पास करके आपने सभल की संस्कृत पाठशाला में अध्यापक की नौकरी कर ली। वहीं आर्यसमाज की पुस्तक पढ़ने तथा पूज्य पं० वंशीधरजी पाठक एवं पूज्य पं० शिवशर्माजी की संगति से आर्य-समाजी बने। कुछ दिन मुरादाबाद के इस्लमिया स्कूल में पढ़ाया। रतनपुर जैन पाठशाला में भी पढ़ाया। फिर बरेली में कल्याणी पाठशालाओं के (हरिजन पाठशालाओं के) निरीक्षक बने। वहाँ से श्री पं० भोजदत्तजी के स्थापित किये आर्यमुसाफिर विद्यालय आगरा में पढ़ाते रहे फिर चार वर्ष बिजनौर मण्डल में उपदेशक रहे। वहाँ से हटकर बरेली सरस्वती विद्यालय में पढ़ाया फिर बदायूँ जिले के उंझानी नगर में म्यु० बोर्ड इण्टर कालेज में सन् ५६ तक पढ़ाते रहे। यहाँ संस्कृत के प्रवक्ता रहे। अब अवकाश प्राप्त करके समाज

की सेवा कर रहे हैं।

शास्त्रार्थ—पौराणिक, ईसाई, मुसलमानों से पचासों शास्त्रार्थ किये। प्रसिद्ध ईसाइं पादरी ज्वालासिंह को चाँदपुर जिला बिजनौर में करारी हार दी। अलीगढ़ जिले के कचौरा कस्बे में श्री पं० चन्द्रशेखर जी जो अब पुरी के शंकराचार्य हैं, इन्हें करारी हार दी। लखनऊ में पौराणिक पण्डित माधवाचार्य को शास्त्रार्थ में ऐसी पटकी दी कि फिर इसने सामने आने का साहस ही नहीं किया। इसने एक अशिष्टतापूर्ण पुस्तक लिखी जिस पर पंडितजी ने बदायूँ में अभियोग चलाया तब यह और मुद्रक पं० प्यारेलाल मेरठ, क्षमा याचना करके बचे।

शुद्धियाँ—पंडितजी ने सहस्रों हरिजनों को ईसाई होने से रोका और सैकड़ों शुद्धियाँ कीं जो पूरी सफल रहीं। उन्हें आर्यजाति में मिलाकर दम लिया। आज तो वे लोग पूर्णतया ब्राह्मण, ठाकुर, कायस्थ बने हुए हैं।

बलिदान—२९ नवम्बर। सन् '१४ में आर्यसमाज सरायतरीन में समाज मन्दिर पर वहाँ के मुसलमानों ने आक्रमण किया श्री साहु शिवचन्द्र जी प्रधान, मुन्शी सुखदासजी इनके मुख्तारे-आम, बाबू नित्यानन्दजी, मुख्तार श्री मुकुटविहारीलालजी आदि के साथ पंडित जी को भी, मुसलमानों ने बुरी तरह घायल किया।

इसी प्रकार अनेक कठिनाइयाँ सहन कीं और आर्यसमाज की सेवा में लगे रहे। वाराणसी से साहित्य में शास्त्री पास की। कलकत्ता से काव्यतीर्थ पास की। और गुरुमुख से व्याकरण श्री पूज्य पं० भवानीदत्तजी जोशी तथा पूज्य पं० श्रीकान्त झा से पढ़ा तथा दर्शनों का भी अध्ययन किया। स्वाध्याय में लगे रहे। यवनों के साहित्य को भी पढ़ा। आजीविका का साधन अध्यापन को बनाया। त्याग-वृत्ति से काम लिया। अब उनके पुत्र श्री अरविन्दलाल जी एम० ए० एक फैक्टरी चलाते हैं। पंडितजी के पुत्रवत् प्रिय भतीजे श्री पं० रमेशचन्द्र शर्मा खालसा कालेज में वाइस प्रिंसिपल हैं और

उ० प्र० विधान परिषद् के सदस्य हैं। पंडितजी ने आर्य सिद्धान्तों के समर्थन में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। जिनमें वेद-वाणी बहुत ही पठनीय पुस्तक है। पंडितजी के ग्रन्थों को पढ़कर अनेक व्यक्ति उपदेशक बने हैं।

सत्कार—आर्य विद्या सभा बरेली ने शास्त्रीजी को चाँदी पदक और व्याख्यान वाचस्पति की उपाधि से अलंकृत किया। आर्यकुमार सभा बदायूँ ने सोने का पदक और वाणीभूषण की उपाधि प्रदान की।

ये सब पदक शास्त्रीजी ने हैदराबाद सत्याग्रह में दान दे दिये।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की विद्यासभा ने सिद्धान्त-वाचस्पति की उपाधि से सम्मानित किया।

आर्यसमाज तिलकद्वार, मथुरा ने बड़ा शानदार अभिनन्दन-पत्र भेंट किया।

सन्तोषकुमार कण्व एम० एस-सी०
पुस्तकाध्यक्ष आ० स० बिहारीपुर
बरेली

धन्यवाद

इस पुस्तक की प्रेस कापी पूर्ण परिश्रम करके बहूरानी श्रीमती तारा पाण्डे पत्नी पं० श्री अमरनाथ पाण्डे, पुत्री श्री पं० रामप्रसाद जी उपाध्याय प्रवक्ता छं० म० इण्टर कालेज फरीदपुर ने न बनाई होती तो कदाचित् पुस्तक प्रकाश में न आती।

अतः उन्हें हार्दिक धन्यवाद और बहुत-बहुत आशीर्वाद।

शुभेच्छु—
पं० बिहारीलाल शास्त्री

अनुक्रम

पुस्तक के सम्पादक आचार्य जगदीश विद्यार्थी एम० ए०
पं० बिहारी लाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ के साथ

[१]

सन्त-साहित्य का राजनीति पर प्रभाव

सन्त लोग परमार्थ-चिन्तक थे, समाज-सुधार से और मुख्यतः आध्यात्मिकता से उनका सम्बन्ध था। राजनीति से उनका सम्बन्ध जोड़ना महा असंगत है परन्तु राजनीति से उनके साहित्य का सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है, जोड़ा क्या जा सकता है जुड़ा ही हुआ है, यह आप लोग उनका साहित्य पढ़कर जानेंगे।

कबीर जी निर्गुणवादी सन्त थे। मुसलमान घर में पले और रहे, मगर उन्होंने इस्लाम के आचरणों पर दिल खोलकर प्रहार किया है—

दिन में तो रोज़ा रखैं शाम पछारैं गाय,
ऊँचे चढ़ि के बाँग दे कैसे मिले खुदाय।

यह समय इस्लामी राज का था। हिन्दू अचेतन, अर्द्धमृत, निराश, आत्महीन हुआ पड़ा था। कबीर जी की यह खरी उक्ति हिन्दू को कितनी अच्छी लगी होगी? रगों में जान आ गयी होगी। उधर जब ब्राह्मणों को फटकारते थे तो मुसलमानों को संतोष हो जाता होगा कि कबीर निष्पक्ष हैं। इनकी कविताओं में प्रभाव, धर्म, तर्क और बुद्धिवाद, सहिष्णुता और नैतिकता को स्थान देना चाहिए यह सोचने को मनुष्य तैयार हुआ। मुसलमानों से मतान्धता दूर हुई होगी। हिन्दू ढोंग से बचकर सबल बना होगा? सुलझे हुए समाज की राजनीति भी सुलझ जाती है। जाति-पांति के अभिमान को दूर कर योग्यता का आदर करना सिखलाया कबीर ने। इससे हिन्दू समाज के एकीकरण, संघठन को कितना लाभ पहुँचता है। परन्तु हिन्दू

समाज में उनकी शिक्षा का विस्तार नहीं हुआ केवल निम्न वर्ग तक ही उनकी शिक्षा रह गयी। इनकी शिक्षा की अपेक्षा तो महाराष्ट्र के सगुणवादी कवि श्री तुकाराम जी, श्री नामदेव जी, आदि की शिक्षा का महाराष्ट्र के हिन्दुओं में बहुत प्रचार हुआ। कबीर जी की शिक्षा कठोरता तथा अभिमान से भरी है, यज्ञोपवीत्त आदि की मर्यादाओं का उपहास उड़ाया गया है—इसलिए भी उच्चवर्ग ने ठुकरा दी। दूसरे निर्गुणवादी सन्त श्री नानकदेव जी हैं इनके गीतों से हिन्दुओं में जीवन का संचार हो उठा, भक्ति-भावना की ज्योति जागृत हुई। मुसलमान सूफी अपने ज्ञान और आध्यात्मिकता का रोब हिन्दुओं पर गाँठ रहे थे परन्तु गुरुजी के गौरव से सबका गर्व चूर्ण हो गया। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही पर आपका प्रभाव पड़ा।

हिन्दू, मुसलमानों में सद्भावना फैली, सूफियों का द्वेष कम हुआ, हिन्दू को आत्मविश्वास बँधा। यह सब हिन्दू जागृति के लिए अत्यन्त उपयोगी हुआ। आगे चलकर इनके शिष्यों ने धीरे-धीरे माला के साथ भाला भी अपनाना आरम्भ कर दिया और पंचम गुरु अर्जुनदेव के बलिदान के पश्चात् तो राजनीति में सिक्खों को प्रत्यक्षरूपेण प्रविष्ट होना ही पड़ा। और एक समय वह आया कि पेशावर की पहाड़ियां भी सत्श्री अकाल के नारों से गूँज उठीं। फिर तो आगे चलकर पूरे पंजाब पर खालसा का झण्डा गड़ गया और दशम गुरुजी की यह भविष्यवाणी पूरी हुई—

सभी देश में खालसा पंथ गाजै।

जगै धर्म हिन्दू सकल भंड भाजै।

परन्तु श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने हिन्दुओं में एक लड़ाकू वर्ग की स्थापना की। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत ही सिक्ख सम्प्रदाय था जैसे कि वैष्णव, शैव आदि किन्तु अंग्रेजों के चक्कर में आकर अकालियों ने अपने को हिन्दुओं से पृथक् करके सिक्ख धर्म को संकीर्ण बना डाला। माननीय श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज की कविता का

पंजाबी भाषा से दूर का भी सम्बन्ध नहीं, वह सब काव्य ब्रजभाषा में है किन्तु राजनैतिक स्वार्थों में फँसकर अकालियों ने पंजाबी के नाम पर अपने प्रान्त के खंड-खंड कर डाले।

सगुण शाखा के रामभक्त कवि गोस्वामी श्री तुलसीदास जी एक ऐसे महाकवि हुए कि जिनके महाकाव्य ने समाज-व्यवस्था, राज व्यवस्था आदि सब पर ही विचार किया है। सुन्दर सुव्यवस्थित समाज के बिना कोई भी राज-व्यवस्था सुन्दर ढंग से नहीं चल सकती और प्रजातन्त्र तो बिना सुव्यवस्थित समाज के चल ही नहीं सकता।

गोस्वामीजी के समय में भारत में मुग़ल साम्राज्य की तूती बोल रही थी। रावण राज्य के रूप में गोस्वामीजी ने मुग़ल राज्य का ही चित्र खींचा है—

देखत भीम रूप सब पापी,
निसिचर निकर देव परितापी।
करहिं उपद्रव असुर निकाया,
नाना रूप धरहिं करि माया॥

जप जोग विरागा तप मख भागा, श्रवण सुनइ दससीसा।
आपुनि उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा।
असभ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिय नहिं काना।
तेहि बहु विधि त्रासइ देस निकासई जो कह वेद पुराना।

मुग़ल राज में हिन्दुओं की घोर दुर्दशा थी। हिन्दू हतोत्साह, निराश, आत्महीन होते जा रहे थे। तब गोस्वामीजी ने मानस सुनाकर जनता के हृदय को धीरज दिया। हिन्दुओं में आशा का संचारा हुआ, रावणजन्य यातनाओं से जनता को मुक्त करने के लिए जब अवतार हो सकता है तो इस यवन राज्य से भी कोई शक्ति छुटकारा दिलायेगी ही। देर है, अन्धेर नहीं और यही हुआ कि कुछ काल पश्चात् छत्रपति शिवाजी, वीर बन्दा वैरागी अपनी तलवारों

से हिन्दुओं के संकट काटने लगे। आगे चलकर तो दिल्ली पर मराठों की विजय वैजयन्ती लहराने लगी।

जाटों का डंका बज गया, गोस्वामी जी की दिलाई आशा पर अवलंबित रह कर प्रभु पर भरोसा करके हिन्दू जाति जीवित बनी रही। गोस्वामी जी ने रामराज्य के रूप में एक अच्छे राज्य का स्वरूप प्रस्तुत किया है। गोस्वामीजी ने राजतन्त्र का, प्रजातन्त्र का स्पष्ट वर्णन नहीं किया है किन्तु उनकी रुचि प्रजातन्त्र में है। भगवान् राम को राजतिलक देने के लिए श्री दशरथ जी प्रजा के मुखियों को बुलाकर कहते हैं—

जो पंचहि मत लागे नीका,
करउ हरष हिय रामहि टीका।

महत्त्वपूर्ण कार्यों में पंचों की राय ली जावे यह है गोस्वामीजी को प्रिय। राजतन्त्र हो या प्रजातन्त्र परन्तु प्रजा को सुखी बनाने वाला राज्य हो, शासन प्रजा को निर्भयता, नीति और सुख प्रदान करे।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी,
सो नृप अवस नरक अधिकारी।

प्रजा का दुःख नहीं मिटा तो शासन अधम है, नारकीय है।

उनके प्रभु राम का राज्य है :—

राम राज बैठे त्रैलोका,
हर्षित भये गये सब सोका।
बयर न कर काहू सन कोई,
राम प्रताप विषमता खोई।।
वरनाश्रम निज-निज धरम निरत वेदपथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग।
दैहिक दैविक भौतिक तापा,
रामराज नहिं काहुहि ब्यापा।

सब नर करहिं परस्पर प्रीती
चलहि स्वधर्म निरत श्रुति नीती ।

राज्य का अच्छा और बुरा होना समाज के आचरणों के ऊपर है। राम के राज्य में प्रजा "निरतवेद पथ" है। वर्णाश्रम निज-निज धर्म पर सब चल रहे हैं फिर राज्य अच्छा क्यों न हो? राम प्रजा-प्रिय हैं। राम को प्रजा सन्तान से अधिक प्यारी है। यह उत्तम आदर्श रखा राज्य का गोस्वामीजी ने। महात्मा गांधी जी ने भी रामराज्य का नारा लगाया था किन्तु उनका यह रामराज्य और था। हमारे नेताओं ने गाड़ियों भर कानून बना डाले। सैकड़ों विभाग खोल दिये किन्तु जनता को चरित्रवान् नहीं बनाया। चरित्र सीखती जनता धर्म से और धर्म के नाम से थी इन लोगों को घृणा। न जाने इन लोगों ने धर्म को क्या समझ रक्खा है। धर्म, मजहबों की तरह संकीर्ण विचारधारा वालों पर विश्वास नहीं कराता है। धर्म है, सृष्टि का, समाज का, समूह का, परिवार का धारक नियम जो पूर्णप्रज्ञ योगियों ने बनाये हैं वे धर्म हैं, चरित्र हैं। आज नैतिकता और चरित्र धूल में लोट रहा है और नेता विमानों में उड़ रहे हैं। अधिकार के लिए सब लड़ रहे है, कर्त्तव्य मृतप्राय पड़ा है। विद्यार्थी पढ़ना छोड़ हड़ताल पर, मजदूर काम छोड़ हड़ताल पर, अनशन, हड़ताल, हुल्लड़ और उपद्रव। न जाने देश किस गड्ढे में गिरेगा।

एक उर्दू कवि कहता है—

तबीबों के चेहरे भी उतरे हुए हैं।
मरज कौम का ला दवा हो रहा है ।।

दवा है सन्तों के उपदेश। इन उपदेशों से समाज बनेगा और सच्चरित्र समाज बनेगा और सच्चरित्र समाज में प्रजातन्त्र उत्तम फलदायक बन जाता हैं। गोस्वामी जी की उपदिष्ट राजनीति सब देशवालों के लिए लाभदायक है। अंग्रेजी काल में भी कई सन्त हुए जैसे

श्री रामकृष्ण परमहंस। इनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द जी ने यूरोप और अमरीका में अपने भाषणों के द्वारा भारतीयों का मान बढ़ाया। हिन्दू धर्म की धाक जमा दी। इसका राजनैतिक प्रभाव यह हुआ कि जो लोग भारतीयों को हीन समझते थे उनके विचार बदल गये। हिन्दू सभ्यता का प्रभाव जमा, इससे भारत की प्रतिष्ठा बढ़ी। बड़े देशों की सहानुभूति भारत को प्राप्त हुई। दूसरे सन्त हुए श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती। इनके क्रान्तिकारी मन्त्र "सत्यार्थप्रकाश" की इन पंक्तियों ने राजनीति पर बहुत प्रभाव डाला—

१. "अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य प्रमाद और परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की कथा ही क्या कहना किन्तु आर्यावर्त्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस देश में नहीं है।"

२. "जो कुछ है भी सो विदेशियों से पादाक्रान्त हो रहा है।"

३. "कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि तथा उत्तम होता है।"

४. "अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं है।"

—प्रथम समुल्लास

इन पंक्तियों का प्रभाव यह हुआ कि आर्यसमाज में स्वदेश भक्तों का समूह तैयार हो गया। श्री लाला लाजपतराय, श्री सरदार अजीत सिंह जी, श्री रामभजन दत्त जी चौधरी आदि अनेक आर्य-समाजी नेता स्वतन्त्रता संग्राम के नेता बने। पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी ने तो राष्ट्रहित में तन, मन, धन, प्राण सब ही कुछ बलिदान कर दिया। श्री स्वामी दयानन्द जी के प्रसिद्ध शिष्य श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा ने विदेशों में जाकर भारतीय स्वतन्त्रता के लिए प्रचार-कार्य किया। श्री सावरकर जी, श्री मदनलाल ढींगरा आदि अनेकों

क्रान्तिकारी वीर श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा के शिष्य हुए हैं। इनकी क्रान्तिकारी पार्टी में श्री सरदार भगतसिंह जी, श्री रामप्रसादजी बिस्मिल, श्री ठाकुर रोशन सिंह जी आदि पचासों आर्य वीरों ने बलिदान दिये हैं।

श्री स्वामी दयानन्द जी वैदिक धर्म के प्रचारक थे और श्री गोस्वामी जी रामभक्ति के प्रचार में लगे रहे। परन्तु सब की वाणी अदृष्ट प्रेरणा दे जाती है। गोस्वामीजी समाज में विषमता नहीं चाहते। वह विषमता केवल कानूनों से दूर नहीं होती उसके लिए राम-प्रताप चाहिए। रामभक्त मनुष्य स्वार्थ और अभिमान छोड़ें, दयालु बनें। अन्यों के कष्ट को भी देखें। विषमता कम हो समता बढ़ती चले। बिना दबाव के न्याय को दृष्टि में रखकर जनता समाजवाद को अपनाए तब परस्पर वैर-द्वेष मिट जाएगा और राम-राज्य स्थापित होगा।

श्री स्वामी दयानन्द जी चाहते हैं—आलस्य, प्रमाद और परस्पर विरोध दूर हों जो विदेशियों के आर्यावर्त्त में राज्य होने के कारण हैं। आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना, बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्या भाषणादि जो कुलक्षण हैं जनता इनसे बचकर सदाचार में रत हो। देश स्वतन्त्र तो हो गया अब यदि देश सन्तों के बताये मार्ग पर चले तो यह स्वराज्य सुराज्य बन जाए। सच्चा समाजवाद स्थापित हो जाए। जब तक जनता में विषमता है तब तक रामराज्य नहीं। सिनेमाओं के प्रसार के स्थान में सन्तों की वाणियों का प्रसार होना चाहिए। आजकल तो सन्त भी नहीं हैं। सन्तों के वेश में अनेक ठग पाखण्ड फैला रहे हैं। सन्त लोभ, लालच, दुकानदारी से दूर रहते हैं।

अंग्रेजी काल में ही एक और सन्त हुए हैं। सन्त मत भी चलाया गया परन्तु ये सब सन्तगुरु अंग्रेजी सरकार के परम भक्त रहे। राधास्वामी मत के दूसरे गुरु थे श्री रायबहादुर शालिग्राम जी

ग्रौर तीसरे गुरु थे श्री सर ग्रानन्द स्वरूपजी ये सभी ग्रंग्रेजों की उपाधियों से भूषित थे। गुरु ग्रंग्रेजभक्त होते ही थे। उन्होंने जाति को, समाज को केवल एक ही प्रेरणा दी कि हमारे चेले बनो, ग्रौर, वेद, शास्त्र, कर्मकाण्ड, वैदिक मर्यादाएँ सबका उपहास उड़ाया।

राजनीति ग्रौर समाज की हलचलों से सदा दूर रहे। पूरी पड़ताल की जाए तो सगुणवादी सन्तों ने जनता से ग्रधिक सम्पर्क रक्खा है। विशेषकर गोस्वामी तुलसीदासजी ने तो जनता की सभी समस्याग्रों पर विचार किया है। यद्यपि उनके स्वामी श्रीराम एकाधिकार सम्पन्न राजा हैं परन्तु वे इतने ग्रभिमान रहित हैं—

"प्रभु तरु तर कपि डार पर;
तेउ किय ग्राप समान।"

ग्रर्थात् सबसे समान व्यवहार है, प्रेम-प्रवाह चल रहा है। इस प्रकार श्रीराम रूप में एक प्रजाप्रिय शासक का भी वर्णन कर दिया है। सन्तों के शब्दों से ग्रधिक उनके चरित्र का प्रभाव पड़ता है। उनके द्वारा समाज का निर्माण होता है। तो फिर राजनीति उनसे ग्रलग कैसे रह सकती है। ग्राज भी यदि सन्तों की शिक्षा पर देश ध्यान दे तो बड़ा कल्याण हो सकता है।

सर्वस्य कल्याणकरा हि सन्तः।

[२]

भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति का स्वरूप पुराणों, संस्कृत काव्यों, नाटकों और आर्यजाति के पर्वों, संस्कारों तथा कर्मकांडों में अभिव्यक्त होता रहा है।

परन्तु इस संस्कृति का मूलस्रोत है—चार वेद।

यजुर्वेद अध्याय—७ मंत्र—१४ में कहा:—

सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा।

वह पहली संस्कृति है और "**विश्वं वृणोतीति विश्वारा**"—विश्व को वरण करने वाली है—अर्थात् सार्वभौम। वह कौन सी ? —"**ते देवसोम**" सोमदेव की संस्कृति। सोम क्या है ? "**अमृतम् वै सोमः**" (शतपथ०) अमृत, ज्ञान और तप से प्रगट हुआ आनन्द।

आनन्दमयी, ज्ञानात्मक चिन्मयी संस्कृति है वैदिक संस्कृति। जिसका मूल है—अध्यात्म। व्यष्टि से समाष्टि की ओर चलना स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ना, जड़ से चेतन की ओर गति करना भिन्नत्व में एकत्वको देखना। **असतो मा सद् गमय**—असत् से सत् की ओर '**मृत्योर्मा अमृतं गमय**—मृत्यु से अमृत की ओर **तमसो मा ज्योतिर्गमय**—अन्धकार से प्रकाश की ओर चलना। इस स्थूल संसार से सूक्ष्म ब्रह्म की ओर जाना।

अब विस्तार से इस पर विचार कीजिए।

आदि में गणित, गायन, औषधों का ज्ञान, वेदों द्वारा ही

संसार को हुआ ! क्योंकि यजुर्वेद के १६/२४ आदि मंत्रों में गणित के नियम पाये जाते हैं। सामवेद में स्वर ज्ञान, और अथर्व में नानाविध औषधों का वर्णन है। वैदिक यज्ञों के द्वारा ही जहाँ नाट्य कला, कविता, नृत्य आदि ललित कलाएं निकलीं वहाँ नाना प्रकार के चरुओं द्वारा रसायन विद्या का भी विकास हुआ। वस्तुतः यज्ञ कोरे हवन ही नहीं थे। इनके द्वारा, कृषि-विद्या, पशु-पक्षि विज्ञान सबका विकास हुआ था। यजुर्वेद के कई अध्याय इसके प्रमाण हैं। यज्ञों में कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी सबका संग्रह किया जाता था, केवल प्रदर्शन के लिए और यह प्रदर्शन था ज्ञानवर्द्धन के लिए।

पढ़ो अ०—२४ मंत्र—२६—

चक्षुषे मशकान् श्रोत्राय भृंगाः।

नेत्र के लिए मच्छर। कान के लिए भौंरा। जो आँख मच्छर को देखले वह अभी सही है जो कान भ्रमर की गूँज सुनले वह ठीक हैं। ऐसे आयोजनों के लिए यज्ञ में पशु-पक्षी, कीट, जलचर सभी लाये जाते थे।

संस्कार—हमारे संस्कारों में विश्व प्रेम की कैसी शिक्षा दी जाती थी। बच्चा उत्पन्न होते ही उसे मधु चटाया जाता है। विवाह में मधुपर्क के समय मधु (शहद) दही में मिला कर दिया जाता है। इसका भाव यह है कि शक्कर तो अपने कारण गन्ना [इक्षुदण्ड] आदि का विनाश करके बनती है, परन्तु मधु अपने कारण—पुष्पों को बिना हानि पहुँचाए हो तैयार हो जाता है इसी प्रकार मनुष्य को वह आजीविका करनी चाहिए जो मधुवृत्ति वाली हो, अर्थात् किसी को बिना हानि पहुँचाए ही अपना जीवन-निर्वाह किया जाए।

हमारे नित्य के कामों में कुश, तुलसी काम आती है। पुष्प, आम्रपल्लव भी आवश्यक हैं। चीटियों को, काकों को, श्वानों

को गौ को नित्य भोजन देना भी प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है। अग्निहोत्र द्वारा वायु को सुगन्धित और पुष्टिकारक एवं सात्त्विक बनाना भी प्रत्येक गृहस्थ के लिए विधि है। भाव क्या है? "आब्रह्मसत्त्वपर्यन्तम्"—सबसे हमारी आत्मभावना जुड़ी है। सब अपने हैं। सबका कल्याण अभिप्रेत है। जड़ चेतन सबको आत्मवत् देखना।

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः

—यजु० ४०।७

ज्ञानी के लिए सब प्राणी आत्मरूप हैं।

मिस मेयो ने हिन्दुओं के विरुद्ध एक पुस्तक लिखी थी—'स्लेवरी आफ गौड"—(देवताओं की गुलामी)। इस पुस्तक द्वारा उसने हिन्दुओं का उपहास उड़ाया था। परन्तु हम इसमें अपना अपमान नहीं समझते। मार्जनी (बुहारी) देवी है। कलश (घट) देवता है। अश्वत्थ (वट वृक्ष) सब देवता हैं। गौ देवता है। हिन्दू के लिए सारा विश्व दिव्य है, देव रूप है। भगवान् की रचना दिव्य ही होनी चाहिए। दूसरे लोगों ने इस रचना को राक्षसी समझा, निन्दनीय माना। माना करें।

जाकी रही भावना जैसी,
प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।

लोग आक्षेप करते हैं कि हिन्दुओं के दर्शनों में बड़ा मतभेद है। वे अलग-अलग स्वर में बोलते हैं। परन्तु वे नहीं जानते कि हिन्दू धर्म के आचार्यों ने बुद्धि पर ताला नहीं लगाया। स्वतन्त्रता से विचार करने दिया। इस असीम विश्व को नाना दृष्टियों से देखा और विचार रखे; परन्तु वे रुके नहीं। अपना दृष्टिकोण रखकर फिर मत दिया गया।

—नेति नेति—' ऐसा ही नहीं, ऐसा ही नहीं। किसी भी विचार पर विराम नहीं लगाया जा सकता। भगवान् असीम हैं, विचार में

बाँधे नहीं जा सकते । तो उनकी रचना भी असीम है, उसे एक ही प्रकार से नहीं विचारा जा सकता ।

लोग यह भी कहते हैं कि हिन्दुओं में कोई भी एकता का सूत्र नहीं । सब भिन्न-भिन्न जात-पात, सम्प्रदायों में बटे हैं । परन्तु उन्हें जानना चाहिए कि यह भिन्नता ऐसी है, जैसी खरबूजे की फाँकें । ऊपर से पृथक्-पृथक् दीखती हैं, परन्तु भीतर गूदा एक रूप है । जैन बौद्ध, सिक्ख, संत-मत, आर्यसमाजी, सनातनी, ब्राह्मण, वैश्य, खत्री कायस्थ, ठाकुर, बंगाली, मद्रासी, सबकी एकता का मूल सूत्र है—संस्कृति ।

इसके द्वारा त्याग, तप सदाचार, सत्य न्याय, अहिंसा की भावना सबके ही ग्रन्थों में एक जैसी मिलती है । बातें भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु रागिनी के स्वर सबके एक हैं । कर्मफल पर विश्वास, सदाचार का आधार, तप-त्याग को महत्त्व देना ।

आर्यजाति के जितने पर्व हैं, वे सब देश की ऋतुओं के परिवर्तन से सम्बद्ध हैं या महापुरुषों की स्मृति से । भारतीय महापुरुष सार्व-भौम आदर्श हैं । संसार का कोई भी पिता किसी भी मत का हो, राम जैसा ही पितृभक्त पुत्र चाहेगा । पति सीतादेवी-सी ही पतिव्रता भक्त नारी पसन्द करेगा । भाई भरत और लक्ष्मण जैसे ही होने चाहिएं ।

यज्ञ, अग्निहोत्र भारतीय संस्कृति की प्रमुख परम्परा है । **"येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः"**—सृष्टि के आदि में सबसे प्रथम मनु महाराज ने पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इन सात होताओं को साथ लेकर मानसिक यज्ञ किया । इसी की ध्वनि बाइबिल में हज़रत आदम के लड़के हज़रत 'काइन' ने जौ की बालों से यहोवा" के लिए अग्नि में भेंट चढ़ाई ।

एकेश्वरवाद का प्रथम विद्यालय—उर्दू के प्रसिद्ध कवि और मुस्लिम लीगी लीडर सर इकबाल लिखते हैं—

मीरे अरब को आई ठंडी हवा जहाँ से।
वहदत की लै सुनी थी दुनिया ने जिस मकां से।

हज़रत मुहम्मद साहब को जहाँ से शीतल समीर पहुँची और संसार ने जहाँ से एकेश्वरवाद का राग सुना।

हदीसों में वर्णन आता है कि हज़रत मुहम्मद साहब पूर्व को मुख किये खड़े प्रार्थना कर रहे थे, साथियों ने पूछा कि इधर प्रार्थना क्यों कर रहे हैं ? उत्तर में उन्होंने कहा कि भारत की ओर से वहदानियत (एकेश्वारवाद) की ठण्डी हवा आ रही है। यह घटना मौलाना सुलेमान नदवी साहब ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "अरब और हिन्द के पुराने ताल्लुक़ात" में लिखी है। महात्मा ईसूमसीह की शिक्षाओं पर भी गीता के उपदेशों की छाप दीख रही है। बाईबिल के पुराने अहदनामे की नहीं।

दर्शनशास्त्र का स्रोत ऋग्वेद का नासदीय सूक्त है और अथर्ववेद के "**बालादेकमणीयस्कम्**" आदि अनेक मंत्र।

ज्योतिष शास्त्र के नियमों का उदय यज्ञों में उस बहुत प्राचीनकाल में हो चुका था, जब संसार के लोग ग्रहण को देख कर डर जाते थे। ऋतु, मास, काल-गणना यजुर्वेद में है ही, जो युग-युगान्तर तक चली गयी है।

इतनी प्राचीन, ज्ञानमयी, विविध-रूपा है भारत की संस्कृति। और सबसे पहली और सब संस्कृतियों, और विकृतियों की जन्मदात्री भी है। कारण ?

कारण है, इस पुण्यक्षेत्र का प्रभाव। संसार में कहाँ है गंगा और कहाँ है काश्मीर की अमर गुफा ? कहाँ है बद्रीनारायण और हरिद्वार ? और कहाँ है नैपाल के पशुपतिनाथ ?

आर्यों के सब ही तीर्थस्थल प्राकृतिक विशेषता लिये हुए हैं ? ऐसे पुण्य-स्थलों पर रुचि कैसी होती है और उससे कैसे संस्कार बनेंगे तथा उन संस्कारों की कृति क्या होगी यह विचारते

ही भारतीय संस्कृति की विशेषता का पता लग जाता है। संसार के किस देश में छह ऋतुएं होती हैं? इतने सुरभित सुन्दर और विविध रंग वाले सुमन कहाँ मिलेंगे? कहीं गरम जल को धाराएँ, कहीं शीतल सलिल वाहिनी सरिताएं, कहीं उत्तुंगशृंग गिरिराज, कहीं निरा बालू। यह विविधरूपा सस्यश्यामला मलयज-शीतला भारत भूमि का प्रभाव है कि उसकी संस्कृति विश्व-मोहनी है। भारत की वास्तुकला का गुणगान एलोरा और अजन्ता की गुफाएं कर रही हैं। अजन्ता की और बाघ की गुफाएं चित्रकला को दर्शा रही हैं, तो बुन्देलखंड (खजुराहो) और दक्षिण के मन्दिर यहाँ की कारीगरी की सूक्ष्मता को बता रही हैं। दिल्ली का 'लोह-गरुड़-ध्वज' हमारी संस्कृति की दृढ़ कला को दिखा रहा है। "समरांगण सूत्रधार" नामक ग्रन्थ पढ़ा जाए तो पता चलता है कि जिस यान्त्रिक कला का विकास यूरोप में हुआ है, वह पहले भारतीयों के मस्तिक में आ चुकी थी। देखिए - यन्त्र लक्षण —

> यदृच्छया प्रवृत्तानि भूतानि स्वेन वर्त्मना।
> नियम्यास्मिन् नयति यत् तद् यन्त्रमिति कीर्तितम् ॥[1]

यन्त्रप्रकार :—

> स्वयंवाहकमेकं स्यात् सकृत् प्रेर्यं तथापरम्।
> अन्यदन्तरितं वाह्यं वाह्यमन्यत् त्वदूरतः ॥[2]

यन्त्रोदाहरण :—

> यन्त्रेण कल्पितो हस्ती न तद् गच्छन् प्रतीयते।
> शुकाद्याः पक्षिणः क्लृप्तातस्यानुगमान्मुहुः ॥[3]

ऐसा ही हाथी बनवाकर उज्जैन नरेश चण्ड प्रद्योत ने कौशाम्बी नरेश उदयन को शिकार खेलते पकड़वा लिया था।

---

१. सम० ३१।३, २. ३१। १०, ३, ३१। ७३

यह यंत्र कला क्रियात्मक रूप में आगे न बढ़ सकी। इसलिए कि यहाँ बर्बर विदेशियों के आक्रमण लगातार होते रहे और आर्य-जाति आत्मरक्षा में लगी रही।

सूक्ष्म रेशमी वस्त्रों का तो बहुत ही प्रचार था। यहाँ के बने वस्त्र विदेशों तक जाते थे। वेदों में नाना प्रकार के रत्न, और आभूषण धारण करने का वर्णन है। कामसूत्र आर्यों की सुरुचि और शौकीनी का पता देता है। जो लोग यवनिका वस्तुतः शुद्ध रूप में "जवनिका" (जल्दी चलने वाली है) को देखकर यह गप्प हाँक देते हैं कि आर्यजाति ने नाटक-कला यूनान से सीखी, उन्हें पता होना चाहिए कि जब यूनान का अस्तित्व भी नहीं था, त्रेता युग में नाट्यकला का विकास होने लगा था। यह कला वेदों से निकली है।

यथाः—

जग्राह पाठमृग्वेदात् सामेभ्यो गीतिमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसमाथर्वणादपि॥

ऋग्वेद से पाठ—संवाद लिये, सामवेद से गाने, यजु से अभिनय और अथर्ववेद से रस। ऋग्वेद में पुरुरवा-उर्वशी, यम-यमी के संवाद देखकर ही संवाद सीखे होंगे। यज्ञों में अनेक विधियाँ अभिनय रूप में ही होती है वहीं से अभिनय लेना ठीक था। साम तो है ही गायन का मूल। शृंगारादि रस अथर्व से सीखे।

अथर्व में अट्ठाइस नक्षत्रों के नाम हैं। अनेक ग्रहों के नाम हैं। वरुण, मित्र, सौर मंडल, परमेष्ठी मण्डल, प्रजापति मण्डल आदि अनेक खगोल विषयों का ज्ञान वैदिक ऋषियों को था। ऐसी विश्व-ज्ञानमयी तथापि विश्व से विश्वम्भर की ओर ले जाने वाली है—आर्य संस्कृति। "**तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि**" तानाबाना तनते हुए भी, संसार के काम करते हुए भी, इस भूलोक से भानु की ओर अर्थात् ज्ञान और प्रकाश की ओर चलो। परलोक, मानव तन साधन

है, यह साध्य नहीं। इस साधन से साध्य ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त करो; यह है अमर दर्शन भारतीय संस्कृति का। इसलिए हमारे दर्शन सोद्देश्य हैं। केवल खोपड़ी का खिलवाड़ नहीं हैं। सबका लक्ष्य है श्रेयस् की सिद्धि। ऋग्वेद से रामायण तक अनेक रूपों में यह संस्कृति दीख पड़ती है। परन्तु मौलिकता के तत्त्व वहाँ रहते हैं। समय-समय पर इसे विकृत भी किया गया है; किन्तु महापुरुषों ने बार-बार इसकी रक्षा की है। मूल मानव संस्कृति ही वस्तुतः भारतीय संस्कृति है। यही विश्व संस्कृति होने योग्य है। इसके लिए संस्कृत को अन्तर्राष्ट्रिय भाषा बनाना चाहिए और वेदों को अन्तर्राष्ट्रिय धर्मग्रन्थ। ऐसो दिव्य संस्कृति की जन्म-दात्री भारत माता को नमस्कार !

नमो मात्रे पृथिव्यै।

—यजुः

[३]

योग साधन क्यों और कैसे

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ।।

—गीता ५-७

योग का आविष्कार भारत में ही हुआ। यह क्रिया भारत की बिल्कुल अपनी है। गीता के अनुसार इसके आविष्कारक और प्रचारक रार्जषि हुए हैं (**इमं राजर्षयो विदुः** ४।२) यह विश्वासात्मक और विचारात्मक धर्म ही नहीं है किन्तु क्रियात्मक धर्म है, आचारात्मक विधि है। भारत में इसका पहले बहुत प्रचार था। फिर जब देश पर विदेशियों के आक्रमण प्रारम्भ हो गये तब देश की सब धार्मिक क्रियाएं अस्तव्यस्त हो गयीं। योग-साधन को भारत में उत्पन्न हुए सब ही संप्रदायों ने अपनाया है। जैन, बौद्ध, सिक्ख, संत, वैष्णव, शैव सबने ही मानसिक साधना का आदेश दिया है। योग की विधि वेदोपदिष्ट है। "**युञ्जते मन उत युञ्जते धियः।**" परन्तु मुनिवर पतञ्जलि ने इस क्रिया को दार्शनिक रूप दिया। पतञ्जलि जी महाराज मानसिक गतियों के बड़े ज्ञाता रहे होंगे। उन्होंने मनः साधना के उपाय बड़े अच्छे क्रम से निर्धारित किये हैं। योग की अनेक विधियाँ भारत में प्रचलित हुईं; परन्तु पूर्ण वैज्ञानिक विधि पतंजलि की ही ठहरती है। इस विधि पर चलने से अनात्मवादी तक भी लाभ उठा सकते हैं। इससे स्वास्थ्य सुधार, मन की सावधानी, सदाचारमय जीवन और कार्य कुशलता प्राप्त होती है।

आत्मवादियों के लिए तो यह जन्मजन्मान्तर तक लाभ पहुँचाने वाला प्रयोग है।

पातंजल दर्शन के अनुसार योग के आठ अंग हैं। १. यम २. नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान और ८. समाधि। इन आठ अंगों की उपयोगिता तो अनात्मवादी कम्यूनिष्टों को भी स्वीकार करनी पड़ेगी। यम नियमों की व्यवस्था को बिना अपनाए कोई भी शासन और समाज स्थिर नहीं रह सकता।

अहिंसा—समाज में अहिंसा की व्यवस्था न हो तो उग्र व बलवान् सरल एवं निर्बलों को मारकर समाज को थोड़े ही समय में नष्ट कर डालें, और स्वयं भी परस्पर लड़कर मर मिटेंगे। परमात्मा ने मनुष्य को सहानुभूति और दया की भावना दी है। इसको दबाकर मनुष्य हिंसा में प्रवृत्त होकर कठोर आसुरी रूप में परिणत हो जाता है। जिन मतों ने अन्य धर्म वालों के साथ हिंसा और कठोरता के व्यवहार का उपदेश दिया है वे सब आसुरी सम्प्रदाय हैं।

सत्य—सत्य तो राक्षसों तक में प्रतिष्ठित है। वचन का पालन करना तो राक्षसों में भी था। पर आजकल दल बदल राजनैतिक नेताओं ने वचन की महिमा नष्ट कर डाली है।

वचन का विश्वास आज नष्ट-भ्रष्ट हो गया है। सत्य के बिना परस्पर अविश्वास होने से लोक व्यवहार की संपूर्ण गतिविधि नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है।

अस्तेय—किसी के धन को बलात्, छल से, अनैतिकता से न लिया जाए, यह तो आज अनात्मवादी भी चिल्ला रहे हैं।

ब्रह्मचर्य—मानसिक, वाचिक, कायिक तीनों प्रकार के व्यभिचार से अलग रहना।

अपरिग्रह—रुपये-पैसे, अन्न आदि अपनी आवश्यकता से अधिक इकट्ठा न करना और आवश्यकताओं को भी कम करते जाना।

ये पाँच यम हैं जो किसी भी देश और समाज की जनता को उत्तम-से-उत्तम बना सकते हैं।

इनके पालन में मतमतान्तर और संप्रदाय की कोई उलझन नहीं, मानवमात्र के लिए विधान एक से हैं।

आगे ५ नियम हैं—

शौच—भीतरी एवं बाहरी पवित्रता।

संतोष—परिश्रम के बाद जो मिले उसे ही भोगो।

तप—नैतिकता के पालन में कष्ट भी उठाना पड़े, तो उठा लो। जीवन को कोमल, विलासी न बनाकर श्रमशील और कठोर रक्खो।

स्वाध्याय—उत्तम ग्रन्थों का पढ़ना और सुनना।

ईश्वर-प्रणिधान—सब पुण्य ईश्वरार्पण करने, फलाकांक्षा रहित होना।

योगदर्शन में इन व्रतों को—**जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौममहाव्रतम्**—जाति, देशकाल, समय (शर्तों) से न घिरा हुआ सार्वभौम महाव्रत (यूनिवर्सल कैरेक्टर) कहा है। वास्तव में ये यम-नियम सर्वहितकारी हैं।

आगे आसन प्राणायाम में स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए उत्तम उपाय है। नेहरू जी किसी धर्म को नहीं मानते थे परन्तु शीर्षासन किया करते थे।

प्रत्याहार—इन्द्रियों का वश में हो जाना।

धारणा—चित्त की एकाग्रता।

ध्यान—मन की वृत्तियों का विषयों से विरक्त हो जाना।

समाधि—आत्मा का प्राकृत जगत् से हटकर अपने चेतन स्वरूप में स्थिर होकर अपने में व्यापक ब्रह्म का आनन्द प्राप्त करना।

पहले चार अंग तो अनात्मवादियों को भी मान्य रहेंगे। अगले चार भी कुछ अंश तक तो नास्तिक-आस्तिक सबके मानने

योग्य हैं। ईश्वरानन्द की अनुभूति को ईश्वर को न मानने वाले स्वात्मानभूति कह सकते हैं। जैसा कि बुद्ध भगवान् और श्री महावीर स्वामी ने कहा। परन्तु समाधि में कोई अनिर्वचनीय आनन्द अवश्य मिलता है।

योगदर्शन ने कहा है—

योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।

योग के उक्त ८ अंगों का अनुष्ठान करने से ज्ञान का प्रकाश होता है, आत्मज्ञान तक, विवेकख्याति तक।

विवेकख्याति क्या है—

इस सूत्र पर व्यास जी लिखते हैं—

"सत्त्वपुरुषान्यताप्रत्यये विवेकख्यातिः"

बुद्धि और आत्म के पृथक्त्व का प्रत्यय (निश्चय) विवेकख्याति है।

इससे अविद्यादि क्लेशों की हानि हो जाती है। शुद्ध ज्ञान का उदय हो जाता है।

मनुष्य का ज्ञान देश और काल की सीमा से छूट जाता है। अलौकिक ज्ञान की प्राप्ति होती है। यही प्रज्ञापरामिता ऋतंभरा प्रज्ञा, केवल-ज्ञान, आप्तत्त्व योग से मिलता है।

योग अन्धविश्वास की बात नहीं करता, योग का दावा है प्रत्यक्ष करके देख लो।

जिन्होंने अनुष्ठान किया है वे सभी मतों के लोग योग के उपदेश की यथार्थता को स्वीकार कर रहे हैं। अतः अब स्वतन्त्र भारत में भारत की इस पुरातन संपत्ति का प्रसार होना चाहिए। सभी वर्गों के व्यक्तियों को कुछ-न-कुछ योगाभ्यास अवश्य करना चाहिए। विशेषकर सत्ताधारी व्यक्तियों को। श्री स्वामी दयानन्द जी अपने धर्मग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में लिखते हैं—

"सब सभासद् (राजसभा के सदस्य) और सभापति (राष्ट्रपति)

इन्द्रियों को जीतने अर्थात् वश में रख कर सदा धर्म में वर्त्तें और अधर्म से हटे हटाये रहें। रातदिन नियत समय में योगाभ्यास भी करते रहें क्योंकि जो जितेन्द्रिय अपनी इन्द्रियों (जो मन, प्राण और शरीर प्रजा है) इस को जीते बिना बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापन करने को समर्थ कभी नहीं हो सकता।"

उपर्युक्त भाव निम्नलिखित मनुस्मृति के श्लोक के हैं :—

इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः॥[1]

इसलिए योग का प्रचार विज्ञान की शिक्षा के समान ही आवश्यक है। अधिक नहीं तो इतनी साधना तो अवश्य ही सब लोग करें—

क—आहार शुद्धि—नेक कमाई का सात्विक आहार।

ख—व्यवहार शुद्धि—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य व्यवहार (निष्कपट)

ग—सत्त्व शुद्धि—बुरे विचार न करना, मादक पदार्थों का त्याग।

घ—नित्यप्रति एकान्त में बैठकर ध्यान अर्थात् आत्मा-परमात्मा के गुणों का चिन्तन एकाग्र होकर सीधे बैठकर।

ङ—मितभाषण—व्यर्थ न बोलना। गीता में कहा है—

युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

—गीता ६।१७

खाना-पीना, रहन-सहन और कर्मों में सावधान रहना। सोने तथा जागने में नियमित रहने तथा नित्य ध्यान लगाने से योग सब कष्टों से मुक्त कर देता है।

१. मनु० ७।४४

[४]
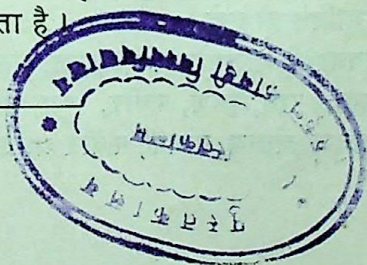
एकता, नैतिकता और श्रम

किसी भी राष्ट्र को शक्तिशाली बनने और बने रहने के लिए एकता, नैतिकता और श्रम तीनों गुण परमावश्यक हैं। हमारा देश कई सौ वर्ष जो विदेशियों से पददलित हुआ, उसका कारण परस्पर की फूट ही थी।

भगवान् राम ने जो एकता का बीड़ा उठाया तो निषाद, गृध्र, वानर, ऋक्ष, सबको एक उद्देश्य में बांध दिया और रावण जैसे शक्तिशाली सम्राट् को नष्ट कर डाला। कृष्ण भगवान् ने पांडवों के द्वारा राष्ट्र को एक साम्राज्य में आवद्ध किया तो राष्ट्र शताब्दियों तक सशक्त बना रहा। यही संघठन-शक्ति मुनिवर चाणक्य ने स्थापित की।

छोटे-छोटे राज्य, अलग-अलग वर्ग और सम्प्रदाय, मत और प्रान्त यदि सब एक भावना के सूत्र में बँधे नहीं हैं तो निःशक्त होते चले जाएंगे। इसलिए हमारे देश को भावात्मक एकता (Emotional Integration) की बड़ी आवश्यकता है। कोई एक भावना ऐसी होनी चाहिए, जिससे बंगाली, गुजराती, पंजाबी, तमिल, मराठे आदि सब प्रभावित हो उठें। हिन्दु, मुसलमान, जैन, क्रिस्तान, सिक्ख और बौद्ध सब प्रभावित हो सकें।

यह भावना है मातृभूमि की एकता, भाषाओं में संस्कृत शब्दों की बाहुल्यता, राम, कृष्ण, कबीर, बुद्ध, महावीर आदि महापुरुष, शंकर, रामानुज, चैतन्य, नानक, कबीर आदि धर्माचार्य और कालि-

दास, सूर, तुलसी आदि कवि इन सबके प्रति आदर भाव, और सब प्रान्तों के तीर्थ स्थलों की मान्यता, प्रणाम के ढंग, विवाहादि की रीतियां, अतिथि सत्कार की महत्ता आदि परम्पराएं भारत के सब प्रान्तों को जोड़ती हैं। महाभारत, रामायण की कथाएं भारत के कोने-कोने में फैली हुई हैं, और सब प्रान्तों को एकत्र करती हैं। सब मिलाकर जिसका नाम हिन्दुधर्म है, वह भारत का राष्ट्रधर्म है, जो भारत के सब भागों, सब सम्प्रदायों और सब जाति उपजातियों को जोड़ता है। हिन्दुधर्म, ईसाई, मुसलमान मजहब की तरह विशेष मत नहीं है।

इसमें वेद मानने वाले सनातनधर्मी और आर्यसमाजी भी हैं और न मानने वाले जैन और और सिक्ख भी। मूर्तिपूजक भी हैं, अमूर्ति पूजक भी। इनमें एकता का सूत्र है इनकी राष्ट्रियता। राष्ट्रियता का आधार है, संस्कृन और संस्कृति के अंग हैं—भाषा, परम्परा, दर्शन, इतिहास, त्योहार, संस्कार और मातृभूमि की पूज्यता। इन अंगों में से कुछ अंग तो ईसाई, मुसलमानों को भी अपनाने होंगे। तभी भावात्मक एकता सम्भव है। भाषा का अरबी-फारसीकरण करना, ऐतिहासिक महापुरुषों का अनादर करना, देश के त्योहार, संस्कार और परम्परा जो ऋतु से सम्बन्ध रखते हैं, उनका विरोध करना, इस प्रकार एकता कैसे सम्भव है? भारत के प्राचीन साहित्य का अनादर करने से एकता का कौन-सा सूत्र है, जो सबको एकता में बाँधे? कविवर रहीम कहते हैं—

कहु रहीम कैसे निभै केर-बेर को संग।
वे डोले रस आपने उनके फाटें अंग॥

परस्पर सहिष्णुता, समादर भावनाओं को समझने पर ही एकता दृढ़ होगी। ऐसी एकता, अंग्रेजों के आने से प्रथम होने लगी थी। पर अग्रेजों ने राजनैतिक तुच्छ स्वार्थों को दिखाकर वह एकता भंग कर दी और महात्मा गाँधी के लाख प्रयत्न करने पर भी भारत

के टुकड़े होने से न बच सके। अब भी प्रान्तीय, भाषा सम्बन्धी, सम्प्रदाय सम्बन्धी, जाति-बिरादरी के भेद वाले झगड़े राजनीतिक मदारी ही कराते हैं। कोरी राजनीति अधिकारभावना और संघर्ष ही बढ़ायेगी। राजनीति की बुराई धार्मिक भावना से ही दूर होगी। क्योंकि धर्म अधिकारों के स्थान पर कर्त्तव्य की प्रेरणा करता है। इसीलिए भीष्म पितामह महाराज युधिष्ठिर को उपदेश करते हुए कहते हैं —

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यमिह लोकस्य जीवनम्।
दण्डनीतिस्त्रयी विद्या तेन लोकान् भवन्त्युत ॥[1]

खेती, पशुपालन, व्यापार प्रजा के जीवन हैं। इन्हें खूब बढ़ाओ। पर इनसे भी ऊँची वेद विद्या है, धर्म-शिक्षण है, वह प्रजा में भावना उत्पन्न करती है। अतः धर्म की वृद्धि होनी चाहिए, जिससे कि भावना प्रकट हो, तब होगी भावात्मक एकता। दूसरा गुण राष्ट्र के लिए आवश्यक है नैतिकता। दुराचार, भ्रष्टाचार, विलासिता से पूर्ण राष्ट्र निर्बल होकर उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे मद्यव्यसनी यादव परस्पर ही कट मरे। अथवा प्रबल विदेशी शत्रु राष्ट्र को आकर पीस डालता है, जैसे कि हूण, पठान, मुग़ल, अंग्रेज इस राष्ट्र को कुचलते रहे। नैतिकता से परस्पर विश्वास पैदा होता है। गरीबों को संतोष और मालदारों में उदारता आती है। शारीरिक स्वास्थ्य दृढ़ होता है। नैतिकता, निर्भयता और आत्मविश्वास बढ़ाती है। संतान को सुखी और पुरुषार्थी बनाती है। नैतिकता का मूल आधार है ईश्वर विश्वास, और ईश्वर की सर्वव्यापकता, सर्वशक्तिमत्ता तथा न्यायपरायणता पर आस्था। ईश्वर जब प्रत्येक समय साथ है तब मनुष्य जग जाएगा और वहाँ पाप करने में हिचक जाएगा। आस्तिकता, परलोक पर विश्वास, अनेक पापों से बचाने

---

१. महा० वन० १९८।२३

के आधार हैं। यही सब मिलकर धर्म है, धर्म की आधारभूत शिक्षा यही है।

आध्यात्मिक भावना वाला व्यक्ति विवेकी होगा और विवेक रखने वाला व्यक्ति दुराचार, भ्रष्टाचार से बचेगा। विवेक की प्राप्ति केवल शिक्षा से नहीं होती; विवेक मिलता है संतों की संगति से, प्रभु-चिंतन से। जीवन के प्रारम्भ से ही आध्यात्मिक शिक्षा व्यवहार रूप में मिलनी चाहिए। पर आज तो बच्चों को प्रारम्भ से ही विलासी बनाया जा रहा है और कहा जाता है कि जीवन-स्तर इस प्रकार ऊँचा होता है। जीवन का स्तर बाहर की दिखावट से ऊँचा नहीं बनता; जीवन को ऊँचा तो भीतरी भावों से बनाया जाता है। आज अभ्यन्तर में अंधेरा है और बाहर बिजली का प्रकाश दमक रहा है।

तीसरा गुण है राष्ट्रोन्नति के लिए श्रम। प्रत्येक व्यक्ति डटकर श्रम करे। मन लगाकर, रुचि के साथ काम करे तो देश से निर्धनता, बुभुक्षा, रोग सब दूर भागने लगें। पर जब से देश स्वतन्त्र हुआ है, लोग श्रम से जी चुराने लगे हैं। मजदूर चाहता है पैसा पर्याप्त मिले, काम थोड़ा करूँ। विद्यार्थी चाहता है, श्रम कुछ न करना पड़े और प्रथम श्रेणी प्राप्त हो जाए। भारत के निर्माण में पृथु, भगीरथ ने उस समय जबकि ऐसे विशाल यन्त्र नहीं थे, कितना कठिन श्रम किया था।

भूमि को कृषि योग्य बनाया और सिंचाई के साधन जुटा दिये। खांडव वन को जलाकर इतने बड़े, क्षेत्र को आवास योग्य बना दिया भगवान् श्रीकृष्ण ने। ऋषि-मुनि और भगवान् राम एवं भगवान् कृष्ण का जीवन श्रममय जीवन रहा है। पांडवों ने जीवन भर संकटों का सामना किया। हमारे यहाँ विद्यार्थी परिश्रमपूर्ण काम करते हुए ही शिक्षा पाते थे। गुरुकुलवास परिश्रम से पूर्ण होता था। परिश्रमी को रोग नहीं सताते। कठिनाइयों में स्थिर बने रहने की क्षमता श्रम से आती है।

वेद वचन है—

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उप संनमन्तु ।।

स्वर्ग के रहस्य को जानने वाले, कल्याण के इच्छुक ऋषि प्रथम ही तप और दीक्षा में लग गये । उनके तप (परिश्रम) से राष्ट्र में बल और तेज उपजा और देवों ने राष्ट्र को अनेक भेंटें प्रस्तुत कीं । ऋषियों ने इस देश को स्वर्ग बनाने के लिए श्रम किया । जन कल्याण की कामना से ऋषि तप में जुट गये । उनके श्रम से राष्ट्र का एकीकरण हुआ । देश में बल और तेज आया । तब भूमि और द्युलोक से उन्हें नाना पदार्थ मिले । सब ही प्राकृतिक शक्तियाँ उन पर प्रसन्नता से पदार्थों की वर्षा करने लगीं ।

हमें भी स्वतन्त्रता मिली है, पहले नेताओं के तप और बलिदान से, अब इसकी रक्षा और वृद्धि के लिए भी तप की आवश्यकता है । अब नेता लोग डट गये हैं, आराम कुर्सियों पर । जनता से कहते हैं कि परिश्रम करो । एअरकंडीशण्ड कोठों में रहने वाला मन्त्री अपने पुराने जेल साथियों को उपदेश देता है कि महात्मा गाँधी का संदेश लेकर गावों में घूमो, तो वे लोग कहते हैं—"१५ वर्ष तुमने आराम कर लिया अब तुम गाँव में घूमो और हमें कुर्सियों पर बैठने दो ।" स्वर्ण-सिंहासन पर बैठा हुआ, विविध विलासों में फँसा हुआ व्यक्ति जनता को त्याग का उपदेश दे तो घोर वञ्चकता ही तो है । यह समय स्वयं आदर्श उपस्थित करने का है । देश का प्रत्येक व्यक्ति ही तप (श्रम) में लग जाए तो विविध वसुपूर्ण भारत वसुंधरा अपने गुप्त वसु को प्रकट कर देश को स्वर्गसम कर देगी । देश को समृद्ध, सुखी स्वर्गोपम बनाने के लिए आवश्यकता है एकता, नैतिकता और श्रम की और इनकी उपलब्धि होगी धर्म से ; आस्तिकता से । हम सब मिलकर इसी ज्योति को जगाएँ, और देश से दारिद्र्य को भगाएं ।

[५]

राष्ट्र-रक्षा के साधन

कुछ सार्वभौम राजनैतिक घटनाओं के द्वारा अपना भारत स्वतन्त्र तो हो गया है, पर इस स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अभी बहुत कुछ करते रहना आवश्यक है।

यह विचार कि 'हम किसी से शत्रुता नहीं रखते तो हमसे भी कोई शत्रुता क्यों रखेगा' भोले बाबा लोगों का विचार है। व्यवहार में तो यह धारणा विपरीत उतरती है। दुष्ट लोग सदा ही सज्जन-दुर्जन, साधु-असाधु सबका अपकार करने पर तत्पर रहते हैं।

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसंतोषमात्रवृत्तीनाम्।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणः सन्ति॥

राजनैतिक लुब्धक भी सदा असावधान देशों की खोज में रहते हैं। राजनीति में न सन्तपना चलता है, न भोलापन ! आज भारत किसी का भी शत्रु नहीं है, पर इसके चारों ओर शत्रु गरज रहे हैं। तीन ओर पाकिस्तान और चीन, एक ओर पराजित हुआ पुर्तगाल।

इतिहास साक्षी है कि भारतियों ने कभी किसी देश पर आक्रमण नहीं किया, किसी की सम्पत्ति नहीं लूटी, किसी देश की स्त्रियों का सतीत्व खंडित नहीं किया, पर क्या अन्य जातियों ने भारत की इस साधुता का मान किया ? भारत पर दया की या निर्दयता से इसका दलन किया ? अपमान किया ? इसके कला कौशल, वैभव सम्पत्ति और शान्ति को धूल में मिला दिया ! अनेक बर्बर आक्रान्ताओं ने घोर क्रूरता के साथ भारत के शिष्टाचार, नीति, विद्या और विज्ञान का विनाश कर डाला। संसार में सब संत नहीं बन सकते। धूर्त, लुटेरे, लोभी, अत्याचारी भी पनपते ही रहते हैं। इनसे साधुओं की रक्षा के

लिए ही क्षत्रियों की रचना भगवान् ने की है।

क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ़ः।

—रघुवंश

क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति ।।

—वाल्मीकि

चाहे प्रकट रूप से कोई शत्रु हो या न हो। क्षत्रियत्व का स्थापन तो सदा ही रहना चाहिए।

पर क्या किया जाए भारत के दुर्भाग्य को कि यहां 'अहिंसा' का वह दुरुपयोग हुआ कि देश की बर्बादी इस दुरुपयोग ने कर डाली। सम्राट् अशोक के समय सेनाओं की छावनी की जगह 'विहार' देश में छा गये। सैनिकों के स्थान पर निठल्ले भिक्षुक जनता का माल उड़ाते घूमने लगे। किन्तु यह दोष बौद्ध धर्म का न था। बौद्ध धर्म तो चीन जापान में भी था। वहां उसनें कभी भी कायरता नहीं फैलायीं। यह सब उस समय के बौद्ध महन्तों का अपना स्वार्थ था, निकम्मापन था, संकीर्ण साम्प्रदायिकता थी। स्वार्थी बौद्धों की करतूत का उत्तरदायित्व बौद्ध धर्म पर नहीं है। जैन धर्म भी अति-शय अहिंसावादी है, परन्तु जैन सम्राट 'खाखेल्ल' ने बड़े-बड़े युद्ध किये। भारत के क्रूर शत्रु और अधम अत्याचारी सैयद सालार "मसऊद" को परम धाम पहुंचा कर भारतीय प्रजा को त्राण देने वाले महाराज "सुहेलदेव" जैन नृपति ही थे और प्रसिद्ध जैन महा-राज प्रसेनजित के वंशज थे। अहिंसा व्यक्तिगत व्यवहार है, सामा-जिक धर्म है। किन्तु इसका प्रयोग राक्षस आततायियों के उपर नहीं किया जा सकता। खेद है कि भारत में घटित अनेक ऐतिहासिक घटनाओं से भी हमें चेतावनी नहीं मिली। आज भी देश में अनेक लोग हैं जो हमें लक्ष्य भ्रष्ट करने पर तुले हुए हैं। आजकल भी ये लोग घूम-घूम कर यह प्रचार कर रहे हैं कि युद्ध के लिए कोई भी उद्योग करना 'हिंसा' है, पाप है। चीनियों के आक्रमण का सामना

अहिंसा से करो। यद्यपि पूज्य महात्मा गाँधी के जीवन काल में ही क्रूर पाकिस्तानी सेनाओं को काश्मीर से बाहर करने के लिए भारत ने सेना का प्रयोग किया और महात्मा जी ने इसका अनुमोदन किया। रक्षा और विजय के लिए पहली आवश्यकता है विचार सम्बन्धी एकता की। किन्तु कम्युनिष्ट और ये तथाकथित 'अहिंसावादी' राष्ट्र की वैचारिक अखण्डता को भंग करते फिर रहे हैं।

विचार अथवा "इरादा" दृढ़ होना चाहिए। इरादे की दृढ़ता ने अल्पशक्ति वाले शिवाजी को विशाल मुग़ल साम्राज्य को हिला देने वाला बनाया। महाराणा प्रतापसिंह इसी दृढ़ता से अपनी स्वतन्त्रता की साधना में सफल रहे। धनुर्वीर धनंजय जब इन्द्रकील पर्वत पर विजय हेतु तप कर रहे थे तब उनकी परीक्षार्थ वृद्ध तपस्वी के रूप में इन्द्र आ पहुंचे और उन्होंने वैसा ही उपदेश अर्जुन को देना प्रारम्भ कर दिया, जैसा कि भारत के कम्युनिष्ट और अहिंसावादी आज देते फिर रहे हैं। कोई शान्ति सेना बना रहे हैं, कोई मानवता की दुहाई दे रहे हैं।

इन्द्र कहने लगे—

मूलं दोषस्य हिंसादेरर्थकामौ स्म मा पुषः।[1]
तौ हि तत्त्वावबोधस्य दुरुच्छेदावुपप्लवौ॥

अर्थ—हिंसादि दोष के मूल अर्थ और काम को पुष्ट मत कर। यह दोष तत्त्वज्ञान के दुरुच्छेद विघ्न हैं।

विजहीहि रणोत्साहं मा तपः साधु नीनशः।
उच्छेदं जन्मनः कर्तुमेधि शान्तस्तपोधन॥

अर्थ—हे तपोधन! रणोत्साह को छोड़ दे, सुन्दर तप का नाश मत कर। शान्त हुआ मोक्ष के लिए यत्न कर।

यह सब उपदेश सुनकर अर्जुन ने कहा कि महात्मा पहले यह तो जान लो कि मैं कौन हूं? और क्यों तप कर रहा हूं?

१. किरातार्जुनीय ११।२०, २. वही ११।३१

न ज्ञातं तात यत्नस्य पौर्वापर्यममुष्य ते।
शासितुं येन मां धर्मं मुनिभिस्तुल्यमिच्छसि ॥[1]

बिना समझे बूझे मुझे मुनियों का-सा उपदेश दे रहे हो? मैं राजकुमार हूं, क्षत्रिय हूं। सुनो—

प्रमार्ष्टुमयशः पंकमिच्छेयं छद्मना कृतम्।
वैधव्यतापितारातिवनितालोचनाम्बुभिः ॥[2]

मैं छल से (जुए से) किये हुए अपयश रूप कीच को विधवापन से संतापित शत्रु स्त्रियों के आसुओ से धोना चाहता हूं। अत—

वंशलक्ष्मीमनुद्धृत्य समुच्छेदेन विद्विषाम्।
निर्वाणमपि मन्येऽहमन्तरायं जयश्रियः ॥[3]

शत्रुओं का नाश करके वशलक्ष्मी (पांडव राज्य) का बिना उद्धार किये मैं मोक्ष को भी विजयलक्ष्मी के लिए विघ्न मानता हूं। इन्द्रदेव ने जब अर्जुन की यह दृढ़ता देखी, तब उसे पशुपतास्त्र की प्राप्ति के लिए शंकर के आराधन का उपदेश दिया।

स्वदेश के अपमान का परिमार्जन करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। आक्रमणकारी राष्ट्र को करारी चोट देकर ही इस अपयश को दूर किया जा सकता है। यह काम बातों से नहीं चलेगा। माऊ चाऊ पंचशील की भाषा नहीं समझते हैं। अहिंसा शब्द उनके कोश में ही नहीं हैं। (सह अस्तित्व) कम्यूनिज्म के सिद्धान्त के विरुद्ध है। अतः उस आततायी शत्रु का तो दमन ही करना होगा। इसके लिए दृढ़ इरादा चाहिए, उत्साह चाहिए।

चीनी आक्रमण के समय जनता में जो उत्साह जागा था वह नेताओं की बहकी-बहकी बातों से, गलत नीतियों से ठण्डा पड़ गया। जनता श्रद्धा से सुवर्ण दान कर रही थी कि सरकार की स्वर्ण नियन्त्रण नीति ने जनता को सन्देह में डालकर कृपण बना दिया।

---

१ किरातार्जुनीय ११।४२, २. वही ११।६७, ३. वही ११।६९

जनता घोर तप के लिए तैयार है; पर आगे नेताओं को चलना होगा। कष्ट सहिष्णु पहले महाराणा बने थे। अपने को खतरे में पहले शिवाजी ने डाला था। जब नेता कष्टों के सामने बढ़ें तो जनता काल से लड़ने को तैयार हो जाएगी।

इस समय विलासिता को छोड़कर, रगरलियों और आराम को हराम समझकर राष्ट्र के सैनिक बल को बढ़ाना है। सैनिकों में भी वीरता, त्याग और देश पर न्यौछावर होने की भावना को भरना है। मगर आज यह बहुत कम हो रहा है। राष्ट्र में स्वार्थ पूर्ति के लिए संघर्ष चल रहे हैं। भ्रष्टाचार किलोलें कर रहा है। गुटबन्दियों में नेता समय नष्ट कर रहे हैं। जनता पापों से न लजाती है, न भय खाती है, तब बताओ देश और समाज का क्या होगा?

बरबाद चमन के करने को तो एक ही उल्लू काफी है।
जब हर शाख पै उल्लू बैठा हो तो अन्जामे गुलिस्तां क्या हागा?

हर एक विभाग में भ्रष्टाचार फैला हुआ है। जनता के निर्वाचित सदस्य ही जब भ्रष्ट हो जाएं तो वे भ्रष्टाचार को रोक कैसे पाएंगे?

अतः राष्ट्र रक्षा के लिए आवश्यक है—

१ भ्रष्टाचार और स्वार्थपरायणता को रोका जाए।
२ कोई व्यक्ति कितना ही बड़ा हो, यदि भ्रष्टाचारी है, तो उसका मान जनता न करे।
३ भ्रष्टता से बने धनियों को समाज में आदर न दिया जाए।
४ तपस्वी, सदाचारियों का आदर होना चाहिए, चाहे वे निर्धन और बेपढ़े भी हों।
५ भ्रष्टाचारियों को कठोर दण्ड दिया जाए।
६ वासना को भड़काने वाले सिनेमा, गाने, सांस्कृतिक कार्यक्रम बंद कर दिए जाएं।
७ सैनिकों में भावात्मक देशभक्ति भरने के लिए उन्हें 'शशिगुप्त'

'रक्षाबन्धन' जैसे नाटक दिखाये जाएं, देशभक्ति और वीरता के गाने सुनाये जाएं।

८ जनता को विलासिता-व्यय रोकने और कष्ट सहन करने की आदत सिखाई जाए।

९ सदा सजग रहा जाए, देशद्रोही गुप्तचर कठोरता से दबाये जाएं।

१० बड़े-से-बड़े नेता को भी अपराधी पाया जाने पर कठोर दण्ड दिया जाए।

११ भिन्न-भिन्न विचार न होकर एक ही प्रणाली विचार की रहे।

श्री दुर्गाजी का चित्र राष्ट्रिय एकता का प्रतीक है—

भुजाएं आठ हैं सशस्त्र। चारों वर्ण सशस्त्र हों, काम में जुटे, चारों वर्णों की आठों भुजाएं कर्मशील रहें।

पांव दो हैं—सारे देश की गति में एकता रहे। सेना के पांच व्यक्ति हों या पचास उनके पांवों के शब्द दो ही होते हैं—वाम (लेफ्ट) दक्षिण (राइट) सबके कदम मिले हों। परन्तु मुख एक ही होता है। अर्थात् वचन और आज्ञा एक ही होगी। दो प्रकार के वचन, **'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना'** संघठन का नाश करने वाले हैं। आदेश और अनुशासन की विधि एक ही रहेगी। वाहन सिंह हो अर्थात् बल पर आरूढ़। तव भारतीय शत्रु महिषासुरादि का दमन होगा। पिछली भूलों से आगे को शिक्षा लेनी चाहिए। नीति कहती है—

उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यो भूतिमिच्छता वा पथ्यमिच्छता।

जो अपना ऐश्वर्य चाहे वा हित चाहे उसे उभरते हुए शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। पर बड़े-बड़े नीति विशारदों को समझाने पर भी हमने चीन की उपेक्षा की, पाकिस्तान की परवाह न की। अब तो सनातन नीति—'षड्गुणाः शक्त्यस्तिस्त्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रयः' के अनुसार कार्य होना चाहिए।

संधिर्ना विग्रहो यानमासनं द्वैधमाश्रयं षड्गुणाः। शक्त्यस्तिस्त्रः प्रभावोत्साहमन्त्रजाः। क्षयः स्थानं च वृद्धिश्च त्रिवर्गो नीतिर्वेदि-

नाम् ।

इनमें कोश और दण्ड का तेज प्रभुशक्ति है। इसकी वृद्धि करनी है। यह प्रजा का काम है कि शासन को आर्थिक और सैनिक शक्ति की कमी न होने दे। आश्रय उसका लेना चाहिए जो भारत की तरह प्रजातन्त्र में विश्वास रखता हो और शक्तिशाली भी हो। किसी से भी मिलना पड़े कुछ भी साधन किये जाएं एक बार चीन को धकेलकर तिब्वत के पार कर देना होगा। तिब्वत से बौद्ध प्रजातन्त्र की स्थापना हो, 'सिकियाँग' में तुर्क मुस्लिम प्रजातन्त्र स्थापित हो और चीन में प्रजातन्त्र स्थापित हो, तव ही संसार की चिन्ता दूर होगी। दुष्टों के दमन के लिए युद्ध करना न्याय है, धर्म है। हमें यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि 'यदर्थं क्षत्रिया सूते सोऽद्य कालोऽयमागतः।'

भारत का मान बढ़ाने को, चीनी अन्याय मिटाना है।
अर्जुन की संतति जीवित है, यह जग भर को दिखलाना है॥

*

[६]

पाप को निर्मूल कैसे करें ?

पाप कहाँ से आया इस प्रश्न का उत्तर बाइबिल में केवल यह है कि शैतान से पाप आदम में आया और आदम से आदम की सन्तानों, आदमियों में पाप समा गया।

बाइबिल के अनुसार परमेश्वर ने आदम को अपने रूप में अर्थात् पवित्र बनाया था और उसकी एक पसली से रचा था उसकी स्त्री हव्वा को। उन दोनों को आदेश था कि इस उद्यान के सब वृक्षों के फल खाना पर एक वृक्ष के फल न खाना। बाइबिल में न तो यह बताया गया कि वह बाग क्या था ? और न ही उस वृक्ष का नाम बताया गया है कि जिसके फल खानेको मना किया गया था। वह बाग़ स्वर्ग में था और नाम था 'बाग़े अदन'। ऐसा ही मुसलमानी साहित्य से पता चलता है। बाइबिल में भी एदेन नाम लिखा है। स्वर्ग के बाग का नाम पुराणों में 'नन्दन' है। बाग़ का नाम संस्कृत में उद्यान है अतः अदन शब्द नन्दन वा उद्यान का ही अपभ्रंश हो सकता है अस्तु—

एक दिन शैतान सर्प के रूप में आया और उसने आदम की स्त्री को उस निषिद्ध वृक्ष के फल खाने को बहकाया। हव्वा ने फल खाये तो बहुत स्वादिष्ट लगे, उसने आदम को भी फल खाने की प्रेरणा की तो आदम ने भी फलों का स्वाद लिया। फल खाने पर उन्होंने जाना कि हम नंगे हैं। अतः उन्होंने अंजीर के पत्तों के लंगोट बनाकर पहने; जब ईश्वर वाटिका में आया तब आदम और हव्वा लज्जा से छिप गये थे। ईश्वर ने उन्हें बुलाया तो वे बोले हम नंगे हैं। ईश्वर ने कहा कि क्या तुमने उस वृक्ष के फल खा लिये हैं कि जिसके फल खाने

का हमने निषेध किया था ? आदम ने स्वीकार किया तब ईश्वर ने रुष्ट होकर आदम, हव्वा और सर्परूपधारी शैतान को स्वर्ग से बाहर निकाल दिया और आदम को शाप दिया कि तू मिट्टी में मिल जाएगा, कष्ट से कमायेगा, स्त्री को शाप दिया कि तू कष्ट से बच्चा जनेगी। सर्प को शाप दिया कि तू आदम की एड़ी को काटेगा और वह तुझे लाठी से मारेगा। शैतान ने प्रतिज्ञा की कि मैं मनुष्य को सदा पथभ्रष्ट करता रहूँगा। ईसाईयों के मन्तव्यानुसार आदम ने ईश्वराज्ञा भंग का जो पाप किया वह उसकी सन्तान में भी चालू है।

इस कथा पर दसियों प्रकार से आक्षेप हो सकते हैं। बाइबिल के अनुसार वह वृक्ष ज्ञान का वृक्ष था, उसके फल खाने से भले बुरे का ज्ञान हो जाता था। ईश्वर ने विचारा कि यदि आगे आदम ने जीवन का फल खा लिया हो तो अमर हो जाएगा अतः स्वर्ग से निकाल दिया।

ईश्वर आदम को अविवेकी रखना चाहता था, नंगा रखना चाहता था पशु तुल्य। ईश्वर को ईर्ष्या हुई कि आदम अमर न हो जाए। ईश्वर के घर स्वर्ग में भी शैतान आ पहुँचा। ईश्वर ने क्रोध करके शाप दिये और अपनी निर्दयता प्रकट की। दुराचारी पिता की सन्तान भी दुराचारी ही होती रहे और काने की सन्तान भी कानी ही चलती रहे, यह प्रयत्न के विरुद्ध है। बाइबिल की ये बातें बुद्धि संगत नहीं, ईश्वर को प्रतिष्ठा घटाने वाली भी हैं। ऐसी ही मान्यता लगभग क़ुरान शरीफ़ की है। दोनों ही मतवाले अपने पाप का उत्तरदायित्व शैतान पर डालते हैं। इनके मत में शैतान एक फरिश्ता है। यदि इस कथा को वेद के मंत्र **"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते"** से मिलाकर रूपक बना दिया जाए तो बाइबिल पर से आक्षेपों का भार कुछ हलका हो जाए।

पर पादरियों की बुद्धि वेद तक क्यों जाने लगी ? यह संसार वृक्ष है, इसके फल शैतान (अज्ञान) और हव्वा (वासना) द्वारा खाकर आदम (जीव) जन्म-मरण के कष्ट भोगता रहता है।

अब पाप के मूल कारण का वैज्ञानिक उत्तर, बुद्धि संगत उत्तर देखिए जो गीता में मिलता है। अर्जुन का प्रश्न है—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पुरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

हे यादव! पुरुष न चाहते हुए भी मानो बलपूर्वक किससे प्रेरित हुआ पाप करता है?

भगवान् कृष्ण उत्तर देते हैं—

काम एषः क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

"पाप करने वाले काम और क्रोध रजोगुण से उत्पन्न होते हैं। ये बहुत खानेवाले और पापी हैं, इन्हें वैरी समझो।"

गीता के अनुसार पाप होते हैं, काम, क्रोध के वशीभूत हो जाने से और चित्त की क्रोधवत्ति और कामवृत्ति उदित होती है रजोगुण के कारण। इस प्रकार पाप का मूल कारण है रजोगुण। रजोगुण का संग्रह जीव ने अपने अज्ञान से स्वयं ही किया है। जीव चाहे तो रजोगुण, तमोगुण को नष्ट कर, सत्त्वगुण से भी रहित होकर त्रिगुणातीत बनकर मोक्ष में जा सकता है। अतः पाप का कारण रजोगुण और रजोगुण का संग्राहक अविवेक है। शास्त्र द्वारा, सुसंगति द्वारा, पुण्य साधनों से अविवेक मिटता है, विवेक का उदय होता है। विवेकोदय से साधन करके पूर्व जन्मों से चिपटे हुए रजोगुण को दूर किया जाता है। आगे को रजोगुण जमा होने नहीं दिया जाता, तब जीव की चित्तवृत्ति पापों में नहीं जाती। रजोगुण का संग्रह होता है, रजोगुणी आहार-विहार से, रजोगुणी संगति से, रजोगुणी पुस्तकें पढ़ने से, शास्त्रों में इनका निषेध है। अतः जीवन पद्धति को शास्त्रानुसारिणी बनाना चाहिए और ईश्वराराधन चित्तवृत्ति को अभिमान रहित बनाता है, निर्मल बनाता है, ऋजु बनाता है, अतः ईश्वराराधन पापों से बचने की एक सिद्ध औषध है। योग के साधनों

द्वाराईश्वरोपासना करनी चाहिए—

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ।

—यो० २।२८

योग के अंगों के अनुष्ठान से अशुद्धि (रजोगुण, तमोगुण) क्षी होने पर विवेक ज्ञानदीप्ति होती है, विवेकख्याति तक। सब प्रकार का पाप सबीज नष्ट हो जाता है।

ईसाइयत की पाप-मोचन चिकित्सा है 'वप्तिस्मा'। ईसाई मत का कथन है कि सभी जन पापी हैं क्योंकि पापी आदमी की सन्तान हैं। खट्टे बीज के वृक्ष से पैदा हुए सब वृक्ष खट्टे ही होंगे, मीठे वृक्ष की कलम चढ़ा दी तो वृक्ष मीठे बन जायेंगे। अतः पापियों को वप्तिस्मा देकर उन पर 'रुहुलकुद्स' (पवित्रात्मा) की कलम चढ़ाई जाती है। किन्तु उनकी यह मान्यता प्रत्यक्ष के विरुद्ध ठहरती है। लाखों वप्तिस्मा वाले ईसाई पाप लिप्त और गैर ईसाई भी अनेकों पाप रहित पाये जाते हैं। केवल वही चिकित्सा है जो आर्यशास्त्र बताते हैं।

मन्त्रसाधना, ईश्वराराधना

मतवादियों ने गंगास्नान, वप्तिस्मा आदि सरल साधन बताकर लोगों को जाल में फांसा है। धोखे रूप इलाज है इनका। वैदिक धर्म ने पाप के मूल कारणों को जानकर उनके नाश का उपाय बताया है। इलाज कठिन है, पर है सही।

✻

[७]

मूर्तिपूजा और इस्लाम

मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में कुरान के आदेश निम्न हैं—

'किन को शरीक (ईश्वर के समान) बनाते हैं जो एक वस्तु भी उत्पन्न न कर सकें और जो स्वयं रचे जाते हैं।

—सूर ए अयराफ

अल्लाह के अतिरिक्त अन्य किसी ऐसे को न पुकारो जो न तुम्हारी भलाई कर सके न बुराई; फिर भी यदि तुमने यह किया तो तुम पापियों में हो।

—सूर ए यूनस

मूर्तिपूजा का सबसे अधिक विरोधी मुहम्मदी मत (इस्लाम) है। कुरान के अनुसार मूर्तिपूजक मुश्निक हैं अर्थात् मूर्तियों को, देवताओं को, अल्लाह का साझी (शरीक) वनाते हैं। अतः कुरान की आज्ञा है कि मुश्निकों को क़त्ल (वध) कर डालो—

कातिलुऽऽल मुश्निकीना काफ्फतन कमा युकातिलून कुम् काफ्फतन।

—सूरए तोबा

अर्थ—'मुश्निकों से प्रत्येक प्रकार से लड़ो जैसे वे तुमसे प्रत्येक प्रकार लड़ते हैं।'

पूरे कुरान में जहां-तहां मूर्तिपूजा (शिर्क) का विरोध मिलता है। मूर्तिपूजा के विरोध में मुसलमानों ने वा कुरान ने किसी बौद्धिक युक्ति से वा तर्क से काम नहीं लिया। केवल तलवार चलाई और लाखों व्यक्तियों का निर्दयता एवं क्रूरतापूर्वक वध किया। स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े सभी को ही मारा-काटा। नगर जला दिये। करोड़ों रुपयों का धन-माल लूटा। अच्छे-अच्छे कलापूर्ण मन्दिर

नष्ट कर डाले। हमने चित्तौड़ में महाराजा कुम्भा जी के कीर्ति-स्तम्भ में देखा कि सभी मूर्तियों के नाक, कान, मुंह टूटे हुए हैं। ये मूर्तियां स्तम्भ के पत्थरों में उत्कीर्ण हैं। स्तम्भ सगमर्मर का बना है। वहां के रखवालों ने बताया कि जब अकबर ने चित्तौड़ का दुर्ग जीता तब उसके मुसलमान सनिकों ने ये मूर्तियां खंडित कर डालीं। इसी प्रकार भेड़ाघाट जबलपुर में नर्मदा के किनारे चौंसठ जोगिनों का मन्दिर है उसकी सब मूर्तियाँ खण्डित की गयी हैं। यह कुकृत्य औरंगजेब के सैनिकों ने किया था। मूर्ति को तोड़ना और चित्रों को नष्ट कर डालना इस्लाम में बहुत पुण्य माना गया है। कुछ इस्लामी विद्वानों का मत है कि चित्र नहीं केवल मूर्तियां घर में रखना निषिद्ध है। कुछ का कथन है कि प्राणिमात्र की आकृति बनाना पाप है। क्योंकि प्रलय के दिन खुदा पूछेगा कि ये आकृतियां तुमने बनाई हैं तो इनमें जान डालो और उनको उन मूर्तियों और चित्रों सहित नरक में ढकेल दिया जाएगा। क्योंकि जिस घर में प्राणियों की आकृति होगी उस घर में बरकत का (समृद्धि का) फरिश्ता नहीं जाता। किन्तु अब ये अन्ध विश्वास मुसलमानों में से दूर हो रहे हैं।

अनेक मुसलमान चित्रकार हैं और सैकड़ों मुसलमानों ने अपने चित्र बना रखे हैं। रामपुर के नवाब श्री हामिद अली खां साहब ने अपने दादा साहब की मूर्तियां संगमर्मर की बनवाई थीं। जिनमें से श्री हामिद अली खाँ साहब की मूर्ति तो अब भी एक पार्क में मुरादाबाद से बस द्वारा आने वाले यात्री सड़क के बायीं ओर देख सकते हैं। अकबर के जो महल सीकरी में बने हैं उनमें अनेक प्रकार के चित्र रंगीन और कलापूर्ण बने हैं परन्तु इन चित्रों के चेहरे औरंग-जेब ने बिगड़वा डाले थे। वस्तुतः इस्लाम और उस पर पूरी तरह चलने वाले मुसलमान मूर्तिकला और चित्रकला के घोर शत्रु हैं।

अब विचार कजिए इस ललित कला से उन्हें क्यों चिढ़ है। यह

सुन्दर कला मनों में कोमलता लाती है। उदात्त भावना बढ़ाती है। फिर इससे घृणा क्यों ? विचार करके देखा जाए तो इस्लाम में मूर्तिपूजा का विरोध किहीं आध्यात्मिक भावनाओं को लेकर नहीं हुआ। बिना विचारे अपना समूह बढ़ाने के लिए और परस्पर घृणा फैलाकर अपना राज्य स्थापित करने के लिए ही यह विरोध हुआ है ऐसा विदित होता है।

आर्यधर्म में तो मूर्तिपूजा का निषेध इसलिए किया गया है कि मूर्तिपूजा के द्वारा मनोवृत्ति अन्तर्मुखी न होकर बहिर्मुखी हो जाती है। और चेतन अपने को भूल कर अपनी बनाई जड़ कृतियों के अधीन अपने को बना डालता है। सर्वव्यापक ईश्वर को एक देशी बनाकर अज्ञान का प्रचार करता है। साथ ही चमत्कार आदि अन्धविश्वास भी इससे फैलते हैं। अब जहाँ तक अन्धविश्वासों का सम्बन्ध है तो मूर्तिपूजकों से सहस्र गुना अन्धविश्वास मुसलमानों में है।

और यह केवल ऊपरी बात नहीं है। इस अन्धविश्वास का मूल है हज्ज करना जिसका कि अनिवार्य विधान कुरान में है। जो लोग मक्के की इमारत और उसमें लगे हुए काले पत्थर को (संगे अस्वद को) अपनी श्रद्धा का केन्द्र बना लें और उसकी परिक्रमा करके अपने को पुण्यवान् समझें, उस काले पत्थर को चूम कर अपने अपराधों को क्षमा किया हुआ (दण्ड रहित) मान ले उस अन्धविश्वासी को क्या अधिकार है, ईसाइयों की सलीब तोड़ने का, हिन्दुओं की मूर्तियाँ और मन्दिरों को नष्ट करने का ? मुसलमानों का तथा इस्लाम का मूर्तिपूजा विरोध भी एक बड़ा भारी अन्धविश्वास ही है। जो मूर्ति को पूजना पुण्य समझता है और जो मूर्ति का तोड़ना पुण्य समझता है, दोनों ही अन्धविश्वासी हैं। मूर्ति जड़ है, वह न सम्मान की अनुभूति रखती है और न अपमान की। इसलिए आर्य लोग न मूर्तिपूजक हैं और न मूर्तिभंजक।

मुसलमानों की कब्र परस्ती का मूल है मदीने में हज़रत मुहम्मद साहब की समाधि पर जाकर प्रार्थना करना। जब रसूल की कब्र के दर्शन पुण्य हों तो फिर अजमेर में ख्वाजा साहब की कब्र पर जाकर पुण्य क्यों न लूटा जाए।

हिन्दुओं के मन्दिरों से भी अधिक मुसलमानों की कब्रें पुज रहीं हैं। अजमेर, बहराइच, बदायूं और पीरानेकलिपर में जाकर मुसलमानों के अन्धविश्वासों की झाँकी देखी जा सकती है। श्री पं० भोजदत्त जी आर्यमुसाफिर ने ठीक ही लिखा है—

बजाहिर पीरो पैग़म्बर परस्ती इनका है इमां,
मगर लफ्ज़ी नुमायश के लिए तौहीद का सामाँ।

इस्लाम ने तौहीद (एकेश्वरवाद) के नाम पर लाखों मानवों की हत्या की, करोड़ों का माल लूटा, भवन बरबाद किये, परन्तु एकेश्वर उपासना का स्थान आज कब्र और ताजियों की पूजा ने ले रक्खा है। कब्रें जीवित प्राणियों की आकृति-सी नहीं है, अतः धड़ाधड़ पुज रही हैं। मूर्तियां जीवित प्राणियों की आकृति जैसी हैं, अतः तोड़ने योग्य हैं। इस्लाम का यह सिद्धान्त निर्बुद्धिता पूर्ण रहा है। जड़ मूर्तियां न भोग खाती है न फूल सूंघती हैं, तो जड़ कब्रों को भी न चादर ओढ़ने की आवश्यकता है, न फूलों के हारों की, न ही रोशनी और वेश्याओं के नाच की। जड़-जड़ ही है। ज्ञान शून्य है, फिर वह चाहे ईश्वर की मूर्ति हो या देवी-देवों की अथवा कब्रें हों या समाधियाँ। उन्हें यह समझकर पूजना कि ये कामनाएं पूर्ण करेंगी, अन्धविश्वास है। चेतन के ज्ञान का अपमान है। ईश्वर तो निराकार है, असीम है, उसकी प्रतिमा तो कल्पना से बाहर की वस्तु है।

परन्तु भावों के चित्र बनाना, वीरों की, महापुरुषों की मूर्तियों के स्मारक बनाना दूसरी बात है। भावना का ही तो भेद है। महारानी लक्ष्मी बाई की मूर्ति झाँसी के दुर्ग के पास स्थापित है।

मसऊद और उसके सब साथियों के संहारक महाराज सुहेल देव जी की मूर्ति श्री लाला श्यामलाल जी प्रधान आर्यसमाज बहराइच ने स्थापित कराई है। यह मूर्तिपूजा वाली भावना से रहित बात है। यह इतिहास की राष्ट्रिय भावनाओं को प्रोत्साहन देने के लिए काव्य है। इससे प्रेरणा मिलती रहती है। ऐसी मूर्तियाँ राष्ट्रिय झंडे के समान होती हैं। परन्तु इस्लाम में यह भी तोड़ दी जायेंगी। इस्लाम जड़ वस्तु पूजा का ही विरोधी नहीं है, आकृति पूजा का, आकृति रचना का भी घोर विरोधी है। क्योंकि इस्लाम का विचार से कोई प्रयोजन नहीं। अन्य लोगों के कामों से विरोध करना ही उसका उद्देश्य है ताकि उनसे लड़ा जा सके। इस्लाम की इस प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि वह बदनाम हो गया। उसकी प्रगति रुक गयी और मूर्तिपूजा बन्द न हो सकी। जितने मन्दिर मुसलमानों ने तोड़े उससे अधिक नये बन गये। इस समय तो मुसलमानों के सामने बड़ी कठिनाई यह है कि अल्लाह का आज्ञा तो है कि

व कातिलू हुम हत्ता लातकूना फित्नतून।
यकूनेद कुल्लहू दीन लिल्लाहि।

अर्थ :—और उनसे (मुशरिकों) से तब तक लड़ते रहो जब तक फितना (शिर्क) न मिट जाए और कुल अल्लाह का दीन इस्लाम न हो जाए।

अब मुसलमान काफ़िरों (कम्युनिष्टों) से लड़ें तो यह इतने हैं कि मुसलमानों का कचूमर निकाल दें। नहीं लड़ते हैं तो अल्लाह की आज्ञा का पालन नहीं करने के अपराधी हैं।

बुद्धिवाद के विरुद्ध अन्धविश्वास पूर्ण इस्लाम मूर्तिपूजा को नहीं हटा सकता। मूर्तिपूजा अज्ञान-जन्य है, वह ज्ञान के प्रचार से ही दूर हो सकती है।

'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" —गीता

✳

[८]

स्वामी दयानन्द की विचारधारा

पाखण्ड खण्डिनी विजयते विमला पताका—

सुरभित पीत बौर से सुशोभित तरु को देखकर चित्त भी प्रफुल्लित हो उठता है। उसकी हरित पत्राच्छादित शाखाओं पर दृष्टि जाती है। स्थूल दृढ़ तने को देखा जाता है पर जो गुठली इसके निर्माण में गल गयी और जिसने अपने को गलाकर इस सुन्दर वृक्ष को प्रकट किया उसकी ओर किसका ध्यान जाता है ?

भारत स्वतन्त्र है। खूब फल-फूल रहा है, परन्तु सन् सत्तावन के विद्रोह के पश्चात् अंग्रेजों की विजय ने भारत को मूर्च्छित बनाकर रख दिया था। उनकी सुँघाई हुई नशीली शिक्षा से भारतीयों को आत्म-विस्मृति होने लगी थी। अराजकता से त्रस्त जनता अंग्रेजों के सुप्रबन्ध को देखकर महारानी विक्टोरिया को भगवती सीता से वरदान प्राप्त त्रिजटा (एक राक्षसी जो अशोक वाटिका में भगवती सीता की सेवा हितपूर्वक करती थी) का अवतार मानने लगे थे।

ऐसे समय पर आर्यजाति की मोहनिद्रा भंग करने के लिए महर्षि दयानन्द ने वेदों का पाञ्चजन्य फूंका। 'सत्यार्थप्रकाश' की ये पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—

१—अब अभाग्योदय और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की कथा ही क्या किन्तु आर्यावर्त्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो

रहा है।

२—कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है।

३—न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।

—अष्टम सम्मुल्लास

४—अपना विजय करना आचार और पराजित होना अनाचार है।

५—जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार व राज्य करें तो विना दारिद्र्य और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता।

क्या विना देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में राज्य वा व्यापार किये स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है?

६—जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे, इन पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले जानियेगा।

७—जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आ के गौ आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपानी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दूःख की बढ़ती होती जाती है।

—दशम समुल्लास

८—सृष्टि से लेकर पाँच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एक राज्य था।

९—इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्यकुल में ही हुए थे।

—एकादश समुल्लास

मत-मातान्तर के खण्डन के लेखों में तो श्री स्वामी जी का मस्तिष्क काम कर रहा है परन्तु उक्त पंक्तियों में उनका हृदय क्रन्दन

कर रहा है ।

श्री स्वामी जी के इस प्रचार का प्रभाव यह हुआ कि देश की मूर्च्छा भंग हो गई। देशवासी अंगड़ाई लेकर खड़े होने लगे। सम्पूर्ण क्रान्ति के सूत्रधार गुरु श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा ऋषि दयानन्द के ही शिष्य थे। भारत के गर्म दल के नेता लाला लाजपत राय जी, सरदार अजीत सिंह जी ऋषि दयानन्द के भक्त थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी, पं० रामभज दत्त चौधरी आदि अनेक कांग्रेसी नेता आर्यसमाज से ही प्रकट हुए। कांग्रेस का बड़े-से-बड़ा नेता भी, अत्यन्त प्रलोभन देकर भी, तलवे चाट कर भी मुसलमानों को अपने साथ पूर्ण रूपेण तथा अन्त तक न रख सका। जब कि आर्य युवकों के लिए पूज्य आदर्श पं० राम प्रसाद बिस्मिल के साथी माननीय अशफाकउल्ला खां बिस्मिल साहब के तरफदार अन्त तक रहे और भारतमाता के बन्धन काटते हुए फाँसी पर झूल गये। कांग्रेस का मुहम्मद अली काम निकल जाने के बाद कांग्रेस को ठोकर मार कर लीग में जा मिला परन्तु आर्यसमाज का मुहम्मद अली शान्ति स्वरूप बनकर हाथों में सदा तिरंगा झंडा लिये रहा। अन्तिम दिन तक धर्म और राष्ट्र का पक्का भक्त रहा।

ऋषि दयानन्द का विशाल आन्दोलन भारत की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए था, भूमण्डल में मित्र भाव फैलाने के लिए था। इस मार्ग को ये उदरम्भर पंडित और पाँव पुजाकर माल चरने वाले साधु और महन्त कैसे अनुभव कर सकते थे ? न्याय, वेदान्त और मीमांसा के महान् पंडित तथा व्याकरण की बाल की खाल निकालने वाले बाराणसीय विद्वान् यहाँ तक कहाँ पहुंच सकते थे ? उनका संसार काशी और काशी नरेश के महलों तक ही था। पौराणिकों की प्रकाशित की गई एक विज्ञप्ति हमने पढ़ी। जिसका शीर्षक था—

'स्वामी दयानन्द का हार' आगे पढ़ा तो इन पौराणिकों के लिखे अनुसार ही स्वामी जी की विजय की ध्वनि निकली जो ध्वनि आज

भी गूँज रही है। इन लोगों ने लिखा है कि श्री स्वामी जी राजा शिव प्रसाद जी सितारे हिन्द से और श्री भारतेन्दु जी से शास्त्रार्थ में परास्त हो गये। खूब तुक उड़ायी। जो लोग संस्कृत ज्ञान से शून्य थे उनसे शास्त्रार्थ कैसा ? एक थे अंग्रेजों के कृपापात्र उर्दू के मुंशी, दूसरे थे हिन्दी के कवि। धर्म के मर्म से दोनों वंचित थे। तीसरा नाम श्री तर्कवाचस्पति ताराचरण जी का लिया है कि स्वामी जी ने जब पंडितों से पूछा कि मूर्तिपूजा में वेद का प्रमाण कहाँ हैं तो श्री तर्कवाचस्पति जी ने कहा कि वेद ही प्रमाण क्यों है तो श्री स्वामी जी ने मनु का प्रमाण दिया उस पर तर्कवाचस्पति जी ने कहा कि वेद की प्रामाणिकता सिद्ध करने को आपने मनु का प्रमाण दिया तो स्मृतियों के आधार पर ही मूर्तिपूजा को प्रामाणिक मानिए, इस पर स्वामी जी चुप हो गये, आगे यदि इनके लिखे को ही सत्य मान लिया जाए तो यही प्रमाणित हुआ कि तर्कवाचस्पति जी वेद में मूर्तिपूजा न दिखा सके। इस पर श्री स्वामी जी चुप न रहते तो क्या करते। श्री स्वामी जी को विश्वास हो गया कि वेद में मूर्तिपूजा वास्तव में नहीं है तो वे बिचारे दिखावें कैसे, बहाने बना रहे है। और आज भी बहाने बनाये जा रहे हैं, एक मूर्ख ने पत्रों में छपाया कि दस सहस्र रुपया इनाम—जो वेद में मूर्तिपूजा को पाप सिद्ध कर दें। कितनी चालाकी भरी है इस प्रश्न में। वेद में मूर्तिपूजा को माना ही हो तो मूर्तिपूजा का अस्तित्व बन गया; पर वेदों में मूर्तिपूजा, कब्र-पूजा पुस्तकपूजा का पृथक्-पृथक् निषेध किया जाये तो वेद का आकार गाढ़ियों भर जाए। अविद्या के और अन्धविश्वास के सब ही काम वर्जित हैं। जब मूर्तिपूजा का विधान वेदों में, ब्राह्मण ग्रंथों में, उपनिषदों में नहीं है तो फिर अवैधानिक काम को करना पुण्य हुआ या पाप ?

मीमांसा ने धर्म का निरूपण करते हुए कहा कि—

चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।

जिस कार्य के लिए वेद की प्रेरणा है वह धर्म है। मूर्ति-पूजा के लिए वेद की प्रेरणा नहीं अतः वह धर्म नहीं और जो धर्म नहीं है वह अधर्म नहीं तो क्या है ? पंचमहायज्ञ धर्म हैं, सर्व-सम्मत हैं, उनपर तो जोर देते नहीं केवल मूर्तिपूजा को सिर पर उठा रक्खा है। ऐसे संकीर्ण लोगों से क्या शास्त्रार्थ ! स्वामी जी ने धर्म के शुद्ध स्वरूप को हमारे सामने रक्खा है जो आर्ष शास्त्र और वेद सम्मत है। कोई भी पौराणिक हमारे आदर्श महापुरुष राम एवम् कृष्ण द्वारा मूर्ति-पूजा का प्रमाण वाल्मीकि रामायण और श्रीमद्भागवत में नहीं दिखा सकते। राष्ट्र को स्वच्छ जीवन देने वाली विचारधारा केवल ऋषि दयानन्द की विचारधारा है जिसका परीक्षण ब्रह्मा से लेकर जैमिनि ऋषि पर्यन्त हो चुका है। यह अनुभूत प्रयोग है, सर्वहितकर है। पर इसका प्रचार अवरुद्ध होता जा रहा है। आर्यसमाज में भी अब नारे-बाजी रह गयी है। "**कृण्वन्तो विश्वमार्यम्**" जय घोष से प्रचार कैसे हो जाएगा। वेद प्रचार मर रहा है। देश के नवयुवक वर्ग में प्रचार का नाम नहीं। ग्रामों में प्रचार इन भजनाकों की बदौलत कभी-कभी हो जाता है। लड़ाई की जड़ संस्थाएँ पनप रही हैं। प्रचार मूर्च्छित है, विदेश प्रचार तो समाप्त ही है। हमने आर्यसमाज के एक नेता को लिखा कि अमरीका और इंग्लैंड में 'हरे राम हरे कृष्ण' का कीर्तन चल रहा है आप भी ओ३म् नाम का प्रचार करिए। उनका उत्तर आया कि सभी बात झूठ है, सनातनियों की उड़ाई हुई है। यह हैं हमारे नेता जो अपनी आँखें बन्द किये हुए हैं और एक उपदेशक को अन्धा बनाना चाहते हैं। कारण है उनकी संकीर्ण पार्टीबाजी। अपनी पार्टी के मूर्ख को भी बाहर भेजेंगे परन्तु कितना ही बड़ा विद्वान् हो, अनुभवी हो यदि इनकी पार्टी का नहीं तो मूर्ख है। जो रोग कांग्रेस को नष्ट कर रहा है वही समाज में घुस गया है। बस जब यह धांधली है तो कैसे वेद प्रचार हो ? इसके लिए आर्य जनता को चेतना होगा !

✻

[९]

श्रीमद्भागवत में

भारत का मानचित्र

हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक और सिंध से गंगासागर के संगम तक सम्पूर्ण भारत एक है, ऐसी मान्यता को अंग्रेजों के मानसपुत्र असत्य बताकर उड़ा देते हैं। उनका कथन है कि इतने बड़े देश को एकता अंग्रेजी शासन ने प्रदान की है। ये संकीर्ण मति लोग केवल राजनैतिक शासन की एकता को एकता मानते हैं। सांस्कृतिक, धार्मिक एकता तो इनके लिए कुछ है ही नहीं।

परन्तु पुराण, स्मृतियाँ, रामायण और महाभारत को देखा जाए तो पूरा भारत सहस्रों वर्षों से एक है। भिन्न-भिन्न शासनाधीन रहती हुई भी भारती प्रजा संस्कृत्या और धर्मेण एक मानस रही है। उत्तर-दक्षिण, हिन्दू, मुसलमान, सिख, ब्राह्मण, अब्राह्मण आदि भेद-भाव के जनक अंग्रेज थे और उनके मानस पुत्र वे नेता हैं जो इस अनैक्य का पोषण कर रहे हैं।

हम यहाँ श्रीमद्भागवत स्कन्ध ५, अध्याय १९ से निम्नलिखित संस्कृत गद्य उद्धृत कर रहे हैं जिससे पाठक जान सकेंगे कि भारत का मानचित्र श्रीमद्भागवतकार की दृष्टि में क्या था—

"भारतेऽप्यस्मिन्वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवो मलयो मङ्गलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेंकटो महेन्द्रो वारिधारो विन्ध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः

पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्द्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुक इन्द्रकीलः कामगिरिरिति चान्ये च शतसहस्रशः शैलास्तेषां नितम्ब-प्रभवा नदा नद्यश्च सन्त्यसंख्याताः। एतासामपो भारत्यः प्रजा नामभिरेव पुनन्तीनामात्मना चोपस्पृशन्ति। चन्द्रवसा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुङ्गभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिन्धुरन्धः शोणश्च नदौ महानदी देवस्मृतिः ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रूश्चन्द्रभागा मरुद्वृधा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः ॥१८॥

अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैर्लब्धजन्मभिः शुक्ललोहितकृष्णवर्णेन स्वारब्धेन कर्मणा दिव्यमानुषनारकगतयो बह्व्य आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वा ह्येव सर्वेषां विधीयन्ते यथावर्णविधानमपवर्गश्चापि भवति ॥१९॥

उपर्युक्त गद्य में भारत के पर्वत और नदियों के नाम हैं। इन पुण्य नदियों में श्री गंगा जी का नाम नहीं है और नगाधिराज हिमालय का भी उल्लेख नहीं हुआ है। इनका वर्णन उत्तर कुरु के वर्णन में प्रथम हो चुका है। यह वर्णन तो साधारण पर्वत और नदियों का है। सुरसरिता और देवभूमि हिमवान् इनसे बड़े हैं।

इन पर्वत और नदियों को यथास्थान रख दीजिए तो भारत का चित्र तैयार हो जायेगा। इस मानचित्र में सिन्ध प्रान्त और पश्चिमी पंजाब-बंगाल भी आयेगा तथा पूरा दक्षिण भी। इस समय मतान्धता के कारण सिन्ध, पूर्व बंगाल और पंजाब, कराची पृथक् हो गये और अब तामिल प्रान्त वाले और नागा लोग पृथक्त्व के गीत गा रहे हैं। केन्द्रीय सरकार निर्बल मनस्क लोगों के हाथ में हैं। इन्हें अपनी गद्दियों की चिंता है देश के गौरव और यशोयुक्त कारनामों से इन्हें कोई संतोष नहीं।

अन्यथा सीधी बात है कि जो इस सुखमयी पक्षपात रहित भारत-

माता की गोद में न बैठना चाहे वह बाहर जा सकता है, पर भारत की अखंडता अक्षुण्ण रहेगी। किन्तु खेद है कि ऐसी घोषणा करने का साहस भारत सरकार में नहीं है। कारण है कि उसे देशभक्त और देशद्रोहियों की पहचान नहीं हैं। सिद्धान्ततः कम्यूनिष्ट और मुसलमान राष्ट्रियता को नहीं अपना सकते। राष्ट्रियता तो यह है कि चाहे कोई व्यक्ति मत, संप्रदाय कोई भी रखता हो, उपासना पद्धति उसकी कोई भी हो किन्तु सार्वजनिक सदाचार के नियमों का पालन करता हो वे सब भाई-भाई हैं। उन सब की सामाजिक और आर्थिक उन्नति समान रूप से होनी चाहिए। राजनैतिक अधिकार सबके समान होने चाहिएँ। देश की उन्नति और रक्षा में सब मिल-कर काम करें। किन्तु इस्लाम का सिद्धान्त है कि गैर मुसलमानों के के साथ तब तक जहाद करते रहो जब तक कि वे सब मुसलमान न बन जाएं। आज कोरिया, वियतनाम और चीन का संघर्ष अन्यों के साथ इसीलिए चल रहा है। इस्लाम और कम्यूनिज्म अन्यों के साथ सह अस्तित्व नियम को नहीं मानते। हां, परास्त होकर मान सकते हैं शक्ति रहते हुए नहीं। जहां जरा भी अवसर मिलेगा संघर्ष करेंगे।

कम्यूनिज्म कहता है कि तब तक संघर्ष और क्रान्ति करते रहो जब तक सब लोग पक्के मार्क्सवादी न हो जाएँ।

मुसलमानों ने इसी सिद्धान्त को लेकर पाकिस्तान बनाया। यही सिद्धान्त कश्मीर में उलझन बना हुआ है। साइप्रस और इस्राईल में भी झगड़ा यही है और मारिशस में भी मुट्ठी भर मुसलमानों ने जो हिन्दुस्तान से ही गये हैं उपद्रव खड़ा करवाया। इस निदान के बिना जाने कोई समस्या नहीं सुलझ सकती।

हिन्दू धर्म ऐसा नहीं मानता। जैन, बौद्ध, सनातनी, द्वैतवादी, अद्वैतवादी सब एक हैं। राष्ट्रियता सब की समान है। ऐसे उदार विचार रखने वाले हिन्दू तो समझे जा रहे हैं साम्प्रदायिक और उग्र मतवादी राष्ट्रिय माने जा रहे हैं।

राष्ट्रिय एकता का प्रतिपादक है संस्कृत-साहित्य। वेद, पुराण, शास्त्र, काव्य, नाटक सब राष्ट्रियता में एक हैं। भगवान् शंकर और रामानुज द्रविड़ हैं परन्तु करोड़ों उत्तर वालों के पूज्य हैं। व्यास, वसिष्ठ उत्तर वाले हैं। राम, कृष्ण उत्तर के हैं परन्तु प्रत्येक भारतीय के पूज्य हैं। गंगा, गोदावरी, रामेश्वरम्, जगन्नाथ—सब के तीर्थ हैं। त्योहार, संस्कार, रीति-नीति सबकी एक है।

राष्ट्रियता के ये अखंड सिद्धान्त यदि सब अपनालें तो भारत की शक्ति अपार हो जाए। किन्तु धर्म निरपेक्षता का ढोल पीटकर ऐसे सुविचारों का गला घोंट दिया गया। अंग्रेजों के आने से पूर्व दक्षिण उत्तर का कोई प्रश्न नहीं था। ब्राह्मण, अब्राह्मण, सवर्ण, अवर्ण का कोई झगड़ा नहीं था किन्तु आज विलगाव की प्रवृति बल पकड़ रही है, एकता के भाव सिर धुनकर रो रहे हैं।

कालिदास किस प्रान्त के थे, किस जाति के थे, भारवि कौन थे इस विचार के बिना उनके साहित्य को सब पढ़ते थे, आज भी पढ़ते हैं। हिन्दू धर्म ने राष्ट्रिय अखंडता के बड़े उदार विचार दिये हैं। हिन्दी हो या तामिल, बंगला हो वा मराठी संस्कृत से सबका सम्बन्ध है। पर राजनैतिक धूर्तों का क्या किया जाए, तामिल के छात्रों ने मंदिर में लिखे संस्कृत के श्लोकों को भी मिटा डाला!

भारत के सब प्रान्तों के पंडितों को एक होकर संस्कृत साहित्य का प्रचार उच्च स्तर पर करना चाहिए। कैसे आश्चर्य की बात है कि आज तामिल के भारतीय छात्र हिन्दी से घृणा करते हैं और पराधीनता के स्मारक अंग्रेजी को गले से लगा रहे हैं। भारत का कोई प्रान्त हिन्दी का विरोध नहीं कर रहा पर

सारी खुदाई एक तरफ
अन्नादुराई एक तरफ॥

इस पागलपन की चिकित्सा होनी ही चाहिए। इस पृथक्तावाद का एक ही इलाज है—धर्म। भावात्मक एकता (Emotional Integ-

ration) धर्म से होगी, धार्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय से होगी। अधिकारलिप्सा का मद धर्म से दूर होगा। मानवता की रक्षा धर्मप्रचार से ही संभव है। ऐसा धर्म भारत में विद्यमान है जो संकीर्णता से दूर है। उपनिषद् और वेदान्त उच्चकोटि की मानवता की शिक्षा दे रहे हैं। इनके विचारों को ऊपर लाना चाहिए। देखिए श्रीमद्भागवत की शिक्षा—

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम्।
सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥२९॥
कामैरहतधीर्दान्तोमृदु शुचिरकिञ्चनः।
अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥३०॥
(११।११)

सब पर कृपा करने वाला, किसी से द्रोह न करने वाला, सब प्राणियों के प्रति सहिष्णु, सत्य को प्रमुख मानने वाला, निर्मल मानस वाला, सबके लिए समान और सबका उपकार करने वाला, जिनकी बुद्धि काम से नष्ट न हुई हो, दमनशील (जितेन्द्रिय) कोमल मन वाला, बाहर-भीतर से शुद्ध, लोभ-मोहरहित, इच्छाओं से रहित थोड़ा खाने वाला, अपने ऊपर कम व्यय करने वाला, शान्त, स्थिर (चंचलता-रहित) केवल मेरी शरण रहने वाला मुनि होता है।

सब प्राणियों के साथ समता रखने और सबका उपकारी होने की शिक्षा वेदशास्त्र, स्मृति और पुराण देते हैं। राष्ट्रियता के लिए यह कितनी उपयोगी है। आगे देशभक्ति के ये श्लोक देखने योग्य हैं—

अहो अमीषां किमकारि शोभनम्,
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥२१॥

कल्पायुषां स्थानज्यात्पुनर्भवात्
क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् ।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः
संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः ।।२३।।
(स्क० ५ अध्य. १९)

अर्थ—अहा ! इन्होंने क्या सुन्दर कर्म किया है, जो स्वयं भगवान् विष्णु, इन पर प्रसन्न हैं । जिन्होंने भगवान् की सेवा के उपायवाला जन्म भारत के आँगन में लिया है । कल्पों की आयु वाले स्थानों की अपेक्षा क्षण भर की आयुवाला भारत भूमि पर जन्म लेना ठीक है क्योंकि मनुष्य क्षणिक शुभकर्मों के फल का त्याग करके भगवान् के अभयपद मोक्ष को भारत में पा सकता है । हिन्दू शास्त्रों की दृष्टि में भारत भूमि केवल भोग भूमि ही नहीं है मोक्ष भूमि भी है ।

हिन्दू के लिए तो भारत माता का एक-एक भूमि कण भी पावन है । तभी तो वह श्रद्धा से गाता है—

वन्दे मातरम्
सुजलां सुफलां सस्य श्यामलाम्
भारतं वन्दे मातरम् ।।

✻

[१०]

साम्प्रदायिकता का विषैला परिणाम

स्वतन्त्र भारत में भी सांप्रदायिकता नष्ट नहीं हुई किन्तु उसका और विकास होने लगा है। संघठन के स्थान पर विघठन बढ़ता जा रहा है। कहीं पंजाबी प्रान्त की मांग है तो कहीं विदर्भ प्रान्त की। कोई नागास्थल को पृथक् करना चाहता है तो कोई द्रविड़ स्थान बनाने पर तुला है। जनता तो कुछ नहीं कहती पर राजनैतिक मदारी अपने स्वार्थों के कारण विदेशियों से प्रेरित होकर देश में जनता को भड़काकर यह उपद्रव मचाये हुए हैं।

अब से बहुत पहले भी महाराज हर्षवर्द्धन के स्वर्ग चले जाने पर भारत में विघठन होने लगा था। छोटे-छोटे राजाओं ने देश को टुकड़ों में बाँट रक्खा था। राजनीति के साथ-साथ धर्म भी विघठित हो चला था। आर्यजाति अपने सनातन वैदिक धर्म से विचलित होकर सम्प्रदायों में बिखर गई थी। वैदिक धर्म और बौद्ध धर्म के धर्म-गुरुओं, महन्तों में अधिकारों की होड़ लगी हुई थी। ऐसी विषम परि-स्थिति में खलीफा बगदाद की आज्ञा से मुहम्मद इब्नेकासिम ने सिन्ध के नरेश दाहर पर आक्रमण किया। मुहम्मद जब मकरान तक ही पहुँचा था कि बौद्धों ने वहीं जाकर उससे भेंट की और उससे प्रस्ताव किया कि यदि तुम बौद्धों से कुछ न कहो तो हिन्दुओं के विरुद्ध हम तुम्हारी सहायता करेंगे। मुहम्मद ने बड़ी प्रसन्नता से उनके इस देश-द्रोहपूर्ण प्रस्ताव का स्वागत किया। मुहम्मद ने जब देवल के बन्दर-गाह परजहाँ हिन्दू देवमन्दिर बहुत विशाल दुर्ग जैसा बना हुआ था

आक्रमण किया तो हिन्दुओं ने बड़ी वीरता से उसको पीछे धकेल दिया। वह बड़े सोच में पड़ा हुआ था तो उससे जाकर बौद्ध पुजारी ने कहा कि इस मन्दिर पर जो झंडा लहरा रहा है आप किसी प्रकार उसे तोड़कर गिरा दीजिए तो हिन्दू सेना युद्ध से विरत होकर भाग जाएगी। क्योंकि हिन्दुओं का विश्वास है कि जब झंडा गिर जाएगा तब हिन्दू शासन समाप्त हो जाएगा। साथ ही इन्होंने मुहम्मद को आर्थिक सहायता भी दी।

बस मुहम्मद ने मुंजलीक (मर्कटी यन्त्र) लगाकर पत्थर मारने प्रारम्भ किये तीन पत्थर लगने पर झण्डे का डंडा टूट गया और हिन्दू सेना भाग खड़ी हुई। पुन: बिरहेमनाबाद (ब्राह्मण वास) पर लड़ाई हुई। यहाँ बौद्धों ने किले के द्वार खोल दिये और खुल्लम-खुल्ला अरबों से मिल गये। सिन्धु नरेश दाहिर रण में स्वर्ग सिधारा। उसका पुत्र प्रथम ही बलिदान हो चुका था। सिंध पर अरबों का अधिकार हो गया।

अब शासन व्यवस्था संभालने के लिए मुहम्मद ने प्रजा के मुखयों को बुलाया जिनमें ब्राह्मण भी थे और बौद्ध भी। मुहम्मद ने प्रश्न किये—

तुम लोग खुदा को मानते हो या नहीं? मानते हो तो क्या मानते हो! ब्राह्मण—हम ईश्वर को सब जगह समाया हुआ और एक मानते हैं।

मु॰—क्या उसने तुम्हें कुछ अहकाम या हिदायतें भी कभी दी हैं, जिन पर चलकर तुम दुनिया और दीन के काम सही चला सको?

ब्रा॰—दी हैं, शुरू दुनिया में ही चार वेद ऋषियों द्वारा हमें दिये जिनमें आदमी के काम लायक सब ज्ञान ईश्वर ने दिया है। हम उन्हें अपनी धर्म पुस्तक मानते हैं।

मु॰—तो तुम लोग यहूदी और नसारा (ईसाई) की तरह अहले किताब हो, कुरान करीम के मुताबिक तुम लोगों से मसावी (बराबर)

के दर्जे की सुलह होगी। तुम जजिया (एक प्रकार का कर जो मुस्लिम शासन में गैर मुसलमानों से लिया जाता है।) देकर अमन चैन से रह सकते हो।

बौद्ध महन्तों से—

मु०—तुम लोग किस देवता को मानते हो ?

बौ०—हम फ़कत बुद्ध भगवान् को मानते हैं।

मु०—बुद्ध तो इन्सान था।

बौ०—वही हमारा भगवान् है।

मु०—वह ख़ालिक दुनिया को बनाने वाला नहीं हो सकता वह तो मख़लूक (रचना) है।

बौ०—दुनिया ऐसी ही चली आती है। इसे किसी ने बनाया नहीं है। दुनिया को बनाने वाला कोई नहीं है।

मु०—तो इस्लाम के मुताबिक तुम लोग दहरिये हो, काफ़िर हो इसलिए तुम्हारे लिए तीन हुक्म हैं।

१—मुसलमान बनो।

२—मुल्क छोड़ो।

३—क़त्ल हो जाओ।

बोलो क्या मंजूर है ?

बौ०—सिर झुकाकर चुप रह जाते हैं।

मुहम्मद बिन कासिम ने अरब सिपाहियों को हुक्म दिया कि इन साधुओं को बाहर ले जाकर क़त्ल कर दो।

बौ०—हमारी मदद से आपकी विजय हुई है। हमने ही देवल के किले के भेद बताये, हिन्दू सेना की निर्बलताएं बतायीं अब हमें यह इनाम दिया जाता है ?

मु०—तुम अपने मुल्क के गद्दार (द्रोही) हो अपनी क़ौम के दुश्मन हो। जब तुम अपने मुल्क और क़ौम के ही न हुए तो हमारे क्या बन सकते हो ? कोई और ग़नीम मुझसे ज़बरदस्त आ जाए तो

तुम लोग उससे मिल जाओगे।

बौद्ध—अगर हम मुसलमान बन जाएं ?

मु०—अगर बौद्ध लोग मुसलमान बन जाएं तो उनको हमारी ही तरह के हक होंगे। मगर तुम लोग तो कत्ल जरूर किये जाओगे। ग़द्दार हिन्दू हो या मुसलमान क़त्ल किया जाएगा।

बौद्ध—अपने-अपने फ़िरके के फ़ायदे को यह किया।

मु०—तुमने फ़िरके का फ़ायदा सोचा और अपने मुल्क वालों से ग़द्दारी की। इसका इनाम लो, सिपाहियों ले जाओ इन्हें बाहर।

अरब सिपाही बौद्ध महन्तों को बाहर ले गये और उनके सिर तलवारों से काट डाले। बाक़ी बौद्ध डरकर मुसलमान बन गये।

बौद्ध-बिहार मस्जिद और तकियों में बदल गये।

साम्प्रदायिक विष का यह फल मिला सिंध में बौद्धों को।

*

[११]

कलियुग और कलयुग

पुराणों में कलियुग का वर्णन अति निकृष्ट समय का निरूपण है। श्रीमद्भागवत स्कन्ध १२ अ० २ में कलियुग का चित्र इस प्रकार खींचा गया है—

ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया ।
कालेन बलिना राजन् नंक्ष्यत्यायुर्बलं स्मृतिः ।।१।।
वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः ।
धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ।।२।।
दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके ।
स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ।।३।।
लिंगमेवाश्रमख्यातावन्योन्यापत्तिकारणम् ।
अवृत्त्यां न्यायदौर्बल्यं पाण्डित्ये चापलं वचः ।।४।।
अनाढ्यतैवासाधुत्वे साधुत्वे दम्भ एव तु ।
स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम् ।।५।।
दूरेवार्ययनं तीर्थं लावण्यं केशधारणम् ।
उदरम्भरता स्वार्थः सत्यत्वे धाष्ट्र्यमेव हि ।।६।।
दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशोर्थे धर्मसेवनम् ।
एवं प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमंडले ।।७।।
ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः ।
प्रजा हि लुब्धै राजन्यैर्निघृणैर्दस्युधर्मभिः ।।८।।

आच्छिन्नदारद्रविणा यास्यन्ति गिरिकाननम् ।
शाकमूलामिषक्षौद्रफलपुष्पाष्टिभोजनाः ॥९॥
अनावृष्ट्या विनंक्ष्ययन्ति दुर्भिक्षकरपीडिताः ।
शीतवातातपप्रावृड्हिमैरन्योऽन्यतः प्रजाः ॥१०॥
क्षुत्तृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव सन्तापेन च चिंतया ।
त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥११॥
क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलिदोषतः ।
वर्णाश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ॥१२॥
पाखण्डप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु ।
चौर्यानृतवृथाहिंसानानावृत्तिषु वै नृषु ॥१३॥
शूद्रप्रायेषु वर्णेषु छागप्रायासु धेनुषु ।
ग्रहप्रायेष्वाश्रमेषु यौनप्रायेषु बन्धुषु ॥१४॥
अणुप्रायास्वोषधीषु शमीप्रायेषु स्थास्नुषु ।
विद्युत्प्रायेषु मेघेषु शून्यप्रायेषु सद्मसु ॥१५॥
इत्थं कलौ गतप्राये जनेषु खरधर्मिणि ।
धर्मत्राणाय सत्त्वेन भगवानवतरिष्यति ॥१६॥

इसका आशय यह है कि कलियुग में धन को ही बड़ा समझा जाएगा आचरण गुणादि को नहीं, बल को न्याय, कामवासना में दाम्पत्य और ब्राह्मणत्व का चिह्न केवल जनेऊ । संन्यास केवल कपड़ों का रंगे होना, राजा लुटेरे, धर्म में ढोंग, मनुष्यों में झूट, चोरी, हिंसा, सब वर्ण शूद्र प्राय, मेघ वर्षा रहित, औषध वृक्ष सब छोटे, आयु बीस तीस वर्ष, अकाल से पीड़ित प्रजा इधर-उधर भागती फिरे तब भगवान् अवतार लेंगे । रामचरितमानस में भी गोस्वामी जी ने कुछ इससे ही मिलता-जुलता वर्णन किया है । यथा—

सब नर काम लोभरत क्रोधी,
देव विप्र गुरु सन्त विरोधी ।

गुणमंदिर सुन्दर पति त्यागी ।
भजहिं नारि परपुरुष अभागी ।।
तामस धर्म करहिं नर, जप तप मख व्रत दान ।
देव न बरखै धरणि पर, वपै न जामहि धान ।।
अबला कच भूषण भूरि क्षुधा ।
धनहीन दुखी ममता बहुधा ।।
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्मरता ।
मति थोरि कठोरि न कोमलता ।।
नर पीड़ित रोग न भोग कहीं ।
अभिमान विरोध अकारण ही ।।
लघुजीवन संवत् पंचदशा ।
कल्पान्त न नाश गुमान अशा ।।

महाभारत में भी इसी से मिलती-जुलती कलियुग की दशा बतायी है ।

बस इस सबका परिणाम यह है कि कलियुग एक बुरी परिस्थिति का चित्रण है । जहां भी जिस समय भी राजनैतिक और सामाजिक दशा पतन को प्राप्त हो जाए बस वह प्रदेश वा समय कलियुग का है ।

ऐतरेय ब्राह्मण में बताया है—

शयनास्तु कलिर्भवति संजिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठन्स्त्रेता भवति कृतः संजायते चरन् ।।

सोता हुआ अर्थात् तमसावृत दशा का समय कलियुग है । नींद छोड़कर कुछ सुस्ती की दशा में होना द्वापर है । शय्या छोड़कर खड़े हो जाना त्रेता और काम करने में संलग्न होना सत्युग है ।

इससे स्पष्ट है कि किसी समय विशेष का यह काम नहीं कि मानव समाज को गिरा दे, किन्तु मानव समाज जब पतन को प्राप्त हो तब कलियुग है ।

मनुस्मृति में जो काल विभाजन है वह तो सृष्टि की दशा परिवर्तन से चार अवस्थाएं कल्पित की गयी हैं।

पहली अवस्था, जब सृष्टि अपनी शक्ति में पूर्ण, नयी, स्वाभाविक रीति से सब पदार्थों को उत्पन्न करने वाली रहती है। मनुष्यादि सृष्टि भी कम और स्वाभाविक रीति से चलने वाले होते हैं। दूसरी अवस्था में कुछ-कुछ विकार आने लगता है। मनुष्यादि भी कृत्रिमता की ओर बढ़ने लगते हैं।

तीसरी दशा इससे भी विकृत और चौथी में सृष्टि पुरानी हो चलती है अपनी नयी शक्ति और यौवन से हीन हो जाती है।

इसके उपरान्त सृष्टि में पुनः परिवर्तन होता है। सृष्टि पुनः नयी हो चलती है। यही युग प्रलय कहाती है। फिर एक मनु (७१ चतुर्युगी) के उपरांत पुर्ननिर्माण और फिर कल्पान्त में आमूल-चूल परिवर्तन। इसका यह अर्थ नहीं कि इस काल में पुण्यात्मा वा उसमें पापी ही हों। हाँ, युग प्रभाव से पूर्ण शक्ति और हीन शक्ति प्राणी तो हो सकते हैं।

यह तो स्पष्ट और प्रत्यक्ष है कि मनुष्य की आयु और शारीरिक दशा पहले से बहुत गिर गयी है। मनुष्य में चालाकी अधिक फैल गयी और श्रद्धा तथा शील की कमी होती जा रही है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि सबकी यह दशा हो। इस काल में भी ऐसे लोग हैं कि जिनका शील देव तुल्य है। फिर गोस्वामी जी, श्री मदभागवत तथा महाभारतादि की-सी तो स्थिति इस समय बहुत थोड़े ही क्षेत्र में मिलेगी। और ऐसी परिस्थिति त्रेता द्वापरादि में भी रही थी। पुराणानुसार तो दैत्यों का उपद्रव सत्युग में सर्वाधिक रह चुका है।

अब आजकल की दशा पर विचार किया जाए तो पुराणों का वर्णित कलियुग तो कहीं नज़र नहीं आता। हां, वैज्ञानिकों का "कलयुग" अवश्य भूमण्डल में राज्य कर रहा है। सारे काम कलों से हो

रहे हैं। लिखना हिसाब लगाना तक कलों से होता है। प्रेम आदि मनोभावों को जानने तक के यन्त्र बन गये हैं। मनुष्य कल का दास बन गया है चेतन पर जड़ का अधिकार होता जा रहा है। श्री मैथिलीशरण गुप्त जी के शब्दों में—

तन सों मन सों हाय सबै परतन्त्र बने हैं।
जंत्र मनुज बन गये मनुज जड़ तंत्र बने हैं॥

इस अर्थ में माना जाए तो अवश्य कलयुग है। जीवन स्वाभाविक नहीं रहा है। मनुष्य प्रकृति के पीछे पड़ गया है। समुद्र की तली छान डाली, आकाश के तारों तक की तैयारी है परन्तु शान्ति, सन्तोष का पता नहीं। भक्ष्य अभक्ष्य का विचार छोड़कर मनुष्य सब कुछ खाने लगा। अण्डों का प्रचार बढ़ गया। उत्पादन भी वैज्ञानिक रीति से दसों गुना बढ़ा लिया गया। फिर भी मनुष्य भूखा है। ऊन, रेशम, सूत, वृक्ष के रेशे, पशु-पक्षियों की खालें और पंख सबके परिधान बना डाले फिर भी मनुष्य नंगा है। क्यों ? आत्म-सन्तोष और आत्मिक प्रकाश मन्द हो गये, वासना और विद्युत् का प्रकाश बढ़ गया। कविवर अकबरदीन इलाहाबादी ने कितना सुन्दर कहा है—

दिल में अब नूरे खुदा के दिन गये
हड्डियों में फ़ासफ़ोरस देखिये।

इस प्रकार अगर देखा जाए तो तमो, रजोगुणात्मक प्रवृत्ति रूप कलियुग है। और यदि उज्ज्वल पक्ष भी इस समय का देखा जाए तो सत्युग का साम्राज्य दिखाई देता है। मनुष्य देवताओं की सवारी विमान पर चढ़ता है, अमृत तुल्य अनेक भोजनों का स्वाद लेता है। सहस्रों मील की घटनाओं को योगियों के समान देखता और सुनता है। जड़ चित्र, सिनेमा में चेतनवत् काम करते हैं। अतः मानना पड़ेगा कि कलियुग सत्युग दोनों की गंगा-यमनी लहरें उठ रही हैं।

ऊपर कर्मशीलता की सत्युगी लहरें और भीतर अन्तस्थल में ईर्ष्या द्वेष, भोगलिप्सा की कलियुगी तरंगें। मनुष्य ज्यों-ज्यों प्रकृति के पर्दे खोलता जाता है त्यों-त्यों उनके चक्कर में फंसता जाता है, उनमें उलझता जाता है। हिन्दी के महाकवि बिहारी लाल जी की सूक्ति आज चरितार्थ हो रही है :—

को सुरझ्यो एहि जाल पर,
मत कुरंग अकुलाय।
ज्यों-ज्यों सुरज भज्यो चहे,
त्यों-त्यों उरझत जाय॥

आज का "कलयुग" कलियुग को ला रहा है। आवश्यकता है इस जड़ "कलियुग" को चेतन सहृदयता से प्रकाशित करने की, आध्यात्मिक भावना ही इस भौतिकवाद के कलियुग को सत्युग में बदल सकती है।

श्री गोस्वामी जी की पंक्तियां स्मरण करने योग्य हैं—

हरि मायाकृत दोषगुण, बिन हरि भजन ना जाहिं।
भजिय राम सब कामि तजि, असि विचार मनमाहिं॥

⁕

[१२]

महर्षि दयानन्द और श्री महावीर तीर्थंकर

ऋषि दयानन्द और श्री तीर्थंकर महावीर जी में एक समता तो विशेषतया है ही कि दोनों का प्रयाण इस संसार से कार्तिक कृष्ण-पक्ष में हुआ। महावीर जी का १४ और स्वामी जी का अमावस्या अर्थात् दीपावली को हुआ। दोनों ही अपने देश में धर्म के दीपक जलाकर बिदा हुए। श्री स्वामी दयानन्द जी ने अपने जन्म से ब्राह्मण वंश को सनाथ किया था तो महावीर जी ने अपने शुभ जन्म से क्षत्रिय कुल को अलंकृत किया था। एक के जन्म से गुजरात विख्यात बना तो दूसरे ने बिहार प्रान्त का नाम चमकाया। भगवान् महावीर के पिता सिद्धार्थ कुण्डलपुर गणतन्त्र के राजा थे और माता त्रिशला जी राजा चेटक की पुत्री थी।

स्वामी जी का परिवार भी सम्पन्न और शिक्षित था। श्री महा-वीर जी के पिता भगवान् पार्श्वनाथ तीर्थंकर के अनुयायी थे और स्वामीजी के पिता शैव धर्म को मानते थे।

स्वामी जी ने युवावस्था प्रारम्भ होते ही घर त्याग दिया और श्री महावीर जी ने ३० वर्ष घर में रहने के पश्चात् गृह त्याग किया।

श्री स्वामी जी ने विवाह नहीं किया। और तीर्थंकर जी के विषय में दिगम्बर जैनों की मान्यता है कि विवाह नहीं किया और श्वेताम्बर कहते हैं कि विवाह हुआ और एक पुत्री हो जाने के पश्चात् गृह त्याग किया।

प्रव्रज्या लेकर महावीर जी १२ वर्ष मौन रहे और देश में भ्रमण

करते रहे। और स्वामी जी ने संन्यास दीक्षा लेकर योगाभ्यास करते हुए भ्रमण किया तथा शास्त्राध्ययन भी।

भगवान् महावीर जी ने जैन धर्म की स्थापना की अथवा पहले से चले आये श्री नेमिनाथ पार्श्वनाथ के सिद्धान्तों को नये ढंग पर सघठित करके वर्तमान जैन धर्म के रूप में स्थापित किया। श्री स्वामी जी ने सनातन वैदिक धर्म को ही फिर उभारा। और उस पर अनेक मतवादियों ने जो धूल धक्कड़ डालकर उसके रूप को बिगाड़ दिया था उसकी शुद्धि की।

महावीर जी के समय भी वैदिक धर्म था, वैदिक दर्शन थे। वैदिक कर्मकाण्ड यज्ञादि होते थे। इन्होंने इन सबका विरोध किया। क्योंकि इनके घरवाले भी वैदिक धर्म को नहीं मानते थे। उस समय ब्राह्मणों के विरोध में, यज्ञों के प्रतिकूल क्षत्रियों में भावना फैल गयी थी। भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर ने उस भावना को दृढ़ किया और यज्ञों को हिंसात्मक बताकर उनके करने से रोका। उस समय यज्ञों में घोर रूप से हिंसा होने लगी थी। क्योंकि यज्ञों के प्रतिपादक वेद माने जाते थे अतः इन दोनों क्षत्रिय साधुओं ने वेद को भी अमान्य ठहराया, उपनिषदों को भी त्यागा। सनातन धर्म से पूरी तरह कट गये।

जैन बौद्ध दोनों सम्प्रदायों में ब्राह्मणों को बहुत हीन समझा जाता रहा है। इसकी ही समर्थक एक कथा है—

भगवान् महावीर जी पहले देवनन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में आये और ८२ दिन तक रहे फिर देवताओं ने विचार किया कि तीर्थंकर कभी ब्राह्मण कुल में जन्म नहीं लेते तब भगवान् महावीर ब्राह्मण कुल में कैसे जन्मेंगे ?

अतः महावीर जी को इन्द्र के द्वारा देवनन्दा के गर्भ से निकलवाकर रानी त्रिशला के गर्भ में पहुँचाया गया ताकि वे हीन-कुल में जन्म लेने से बच जाएँ।

श्री बुद्ध महावीर इन दोनों ने ही वेदोपनिषद् का अध्ययन नहीं किया था। केवल याज्ञिक ब्राह्मणों के व्यवहारों को ही देखकर वेदों को अमान्य कर डाला परन्तु ऋषि दयानन्द ने वेदोपनिषद्, ब्राह्मण-ग्रन्थ और पुराण सबका अध्ययन करके अपने निर्णय दिये और हिंसा-मूलक यज्ञों को अवैदिक ठहराया। वेदों को मान्यता दी, यज्ञों को कर्त्तव्य बताया। वैदिक संस्कारों की पुष्टि की और ब्राह्मणों को प्रथम श्रेणी में रक्खा परन्तु गुण, कर्म, स्वभावानुसार वर्ण-व्यवस्था का विधान किया। श्री बुद्ध, महावीर के समय में भारत में अपने राज्य थे, अपनी ही एक आर्यजाति थी। उसी में कुछ-कुछ भिन्न-भिन्न विचार थे जिनमें रगड़ होती रहती थी। स्वामी जी के समय में पूरा देश परतन्त्र था। आर्यजाति के मतों के अतिरिक्त दो प्रबल विदेशी मत खड़े हुए थे। इनसे संघर्ष करना साधारण बात न थी। उक्त दोनों महापुरुष राजवंशों के थे अतः सहज में क्षत्रियों में उनका मान होने लगा था। क्षत्रियों का ही उस समय शासन था। परन्तु स्वामी जी असाधारण घर के थे उनको केवल भगवान् का सहारा था और अपने आत्मिक बल का विश्वास। उनके पीछे खड़े उनके जाति-बन्धु उनका विरोध कर रहे थे और आगे खड़े अराष्ट्रिय विदेशी मत ईसाइयत और इस्लाम खड्गहस्त थे। ऐसी भीषण एवं कठिन परिस्थिति में स्वामी जी को काम करना पड़ा और सफलता प्राप्त की।

ईसाई पादरियों का लक्ष था कुछ दिन में ही समस्त आर्यजाति को विनष्ट कर इतिहास की वस्तु बना देना, और अंग्रेजी विद्वानों ने तय कर लिया था भारतीय सभ्यता, संस्कृति और स्वाभिमान का मूलोच्छेद कर देना। परन्तु आदित्य ब्रह्मचारी के हुंकार से सबके हौसले जाते रहे, इरादे बदल गये।

बाइबिल का दिल हिल गया। कुरान का कण्ठ सूख गया। यूरोप के विद्वान् झिझक गये। अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति मन मारकर

रह गयी। एक बार फिर हरिद्वार का जंगल वेद गायन से गूँज उठा। प्रातः समीर यज्ञ की सुगन्धि को दिशि-दिशि बिखेरने लगी। होमधूम्र ने आकाश में जाकर वैदिक ध्वजा फिर फहरा दी। पीत वस्त्रधारी ब्रह्मचारियों का समूह पुनः वन में घूमता दिखाई दिया। काषाय वस्त्रधारी अनेक संन्यासी वेदान्त चर्चा करते दीख पड़ने लगे। सहस्रों आर्यकण्ठों से निकला—"वैदिक धर्म की जय।"

जैनों की मान्यता के अनुसार भगवान् महावीर जी ने किसी ग्रन्थ की रचना नहीं की। कोई भी तीर्थंकर ग्रन्थ रचना नहीं करता। तीर्थंकरों की वाणी ध्वनि रूप में बिखरती है। उसे गणधर ही समझ सकते हैं। वे समझकर फिर जनता को समझाते हैं। श्री महावीर जी का गणधर इन्द्रभूति गौतम नामक एक ब्राह्मण था। उसी ने उनके उपदेश जनता को समझाये। परन्तु गौतम गणधर का प्रणीत भी कोई ग्रन्थ नहीं पाया जाता। सब जैन ग्रन्थ आचार्यों के बनाये हुए हैं और दो सहस्र वर्ष से अधिक पुराने नहीं हैं।

जैन अपने ही तीर्थंकरों को सर्वज्ञ मानते हैं। किन्तु उनके पास उनकी सर्वज्ञता का कोई मौलिक वचन नहीं है। आर्यों के पास उनके सर्वज्ञ ब्रह्म के उपदेश वेद रूप में विद्यमान हैं। और ऋषियों के अन्तरात्मा में व्यापक ब्रह्म ने ऋषियों के मुख से वेद शब्द अर्थ सम्बन्ध सहित उच्चारण कराये—

तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्।

—ऋग्वेद

इस दृष्टि से आर्यसमाजी भाग्यशाली हैं और सनातन धर्मी भी सौभाग्यवान् हैं कि उनके अवतार भगवान् कृष्ण के उपदेश व्यासजी के वचनों में गीता रूप में उनके पास हैं। परन्तु जैनों के पास प्रामाणिक वचन के रूप में कुछ भी नहीं है। उनके सर्वज्ञ तीर्थंकर की सर्वज्ञता तीर्थंकर जी के साथ ही चली गयी। पूज्य कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत रत्नत्रय के बाद जैनों के पास सबसे पुराना ग्रन्थ तत्त्वार्थ सूत्र

है जिसे मोक्ष शास्त्र भी कहते हैं। यह श्री उमा स्वामी का रचा हुआ है। इसमें मोक्षमार्ग के साधन बताये हैं—

१—सम्यग् दर्शन, २—सम्यग्ज्ञान, ३—सम्यक् चरित्र।

सम्यग् दर्शनज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गः।

पहला सूत्र ॥

या

श्री महावीर जी के दार्शनिक विचार

जैन मतानुसार महावीर जी के दर्शन का मौलिक सिद्धान्त है—"स्याद्वाद"। इसे ही अनेकान्तवाद भी कहते हैं।

यह स्याद्वाद क्या है और कैसा है इसका वेदान्त दर्शन के द्वि० अध्याय के द्वि० पाद के सूत्र ३३ में वर्णन किया है—

"विवसनसमय इदानीं निरस्यते। सप्त चैषां पदार्थाः संमता जीवाजीवास्रवसंवरनिर्जरबन्धमोक्षा नाम। संक्षेपतस्तु द्वावेव पदार्थौ जीवाजीवाख्यौ। यथायोगं तयोरेवेतरान्तर्भावादिति मन्यन्ते। तयोरिममपरं प्रपञ्चमाचक्षते पञ्चास्तिकाया नाम, जीवास्तिकायः पुद्गलस्तिकायो धर्मास्तिकायोऽधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकायश्चेति। सर्वेषामप्येषामवान्तरप्रभेदान्बहुविधान्स्वसमयपरिकल्पितान्वर्णयन्ति। सर्वत्र चेमं सप्तभंगीनयं नाम न्यायमवतारयन्ति (१) स्यादस्ति (२) स्यान्नास्ति (३) स्यादस्ति च नास्ति च (४) स्यादवक्तव्यः (५) स्यादस्ति चावक्तव्यश्च (६) स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च (७) स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यश्चेति। एवमेवैकत्वनित्यवादिष्वपीमं सप्तभंगीनयं योजयन्ति।

अर्थ—अब जैन सिद्धान्त का खण्डन किया जाता है। ये सात पदार्थ मानते हैं। जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जर, बन्ध और मोक्ष। संक्षेप में तो दो ही पदार्थ हैं—जीव, और अजीव। इन दोनों के ही यथायोग इतरेतर अन्तरभाव से ऐसा मानते हैं। इन दोनों का एक और प्रपंच कहते हैं—**पञ्चास्तिकाय नाम से।**

जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय ।

इन सबके बहुत प्रकार के अवान्तरभेद अपने सिद्धान्तानुसार कल्पित किये हुए बताते हैं। सब स्थानों पर सप्तभंगी नय (स्याद्-वाद) नामक न्याय को लगाते हैं। स्यात् है, स्यात् नहीं है। स्यात् है भी और नहीं भी। स्यात् अवक्तव्य है। कदाचित् है और अवक्तव्य है। कदाचित् नहीं है और अवक्तव्य है। कदाचित् है और नहीं है और अवक्तव्य है। इस प्रकार ही एकत्व और नित्यत्व आदि में भी इस सप्तभंगी न्याय को लगाते हैं।

अब जैन पंडितों के लिखे हुए को भी देखिए—**स्याद्वाद**–स्यात् अर्थात् किसी अपेक्षा से वाद अर्थात् कहना सो स्याद्वाद है। एक पदार्थ में बहुत-से विरोधी सरीखे स्वभाव भी होते हैं। उन सबका वर्णन एक समय में हो नहीं सकता। एक-एक ही स्वभाव का हो सकता है। तब जिस स्वभाव को कहना हो उसमें स्यात् यानी कथचित् या किसी अपेक्षा से (from some point of view) यह ऐसा है सो कहना स्याद्वाद है।

क्या आत्मा नित्य है? हाँ आत्मा सदा बना रहता है इस से नित्य है। क्या आत्मा अनित्य है? हाँ आत्मा अवस्थाओं को बदलता रहता है इसे अनित्य भी है। क्या आत्मा नित्य-अनित्य दोनों है? हाँ, आत्मा एक समय में नित्य-अनित्य दोनों स्वभावों को रखता है।

क्या हम दोनों को एक साथ नहीं कह सकते? हाँ, शब्दों में शक्ति न होने से दोनों को एक साथ नहीं कह सकते। इसी से आत्मा अवक्तव्य स्वरूप है।

क्या अवक्तव्य होते हुए नित्य है? हाँ, जिस समय अवक्तव्य हैं उसी समय नित्य भी है। क्या अवक्तव्य होते हुए अनित्य है? हाँ, जिस समय अवक्तव्य है उसी समय अनित्य भी है। क्या जिस समय अवक्तव्य है उस समय नित्य-अनित्य दोनों हैं? हाँ, जिस समय

अवक्तव्य हैं उस समय नित्य-अनित्य भी है। इसी को इन शब्दों में कहेंगे :—

१—स्यादात्मा नित्यस्वभावः। २—स्यादनित्यस्वभावः। ३—स्यान्नित्यानित्यस्वभावः। ४—स्यादव्यक्तव्यस्वभावः। ५—स्यान्नित्योऽवक्तव्यस्वभावः। ७—स्यान्नित्यानित्योऽवक्तव्यस्वभावः।

स्याद्वाद का यह वर्णन श्री ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी ने 'जैन धर्म प्रकाश' पुस्तक में किया है।

स्याद्वाद की विशेषता में श्री समन्त भद्राचार्य ने अपनी पुस्तक 'आप्त मीमांसा' में लिखा है—

"वाक्येष्वनेकान्तद्योति गम्ये प्रति विशेषं स्यान्निपातोऽर्थद्योतित्वात्तव केवलिनामपि स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात् किं वृतविद्विधिसप्तभंगनयापेक्षो हेयादेय विशेषतः।"

भावार्थ यह है कि वस्तु एक रूप में ही नहीं रहती इसीलिए उसके लक्षण के साथ "स्यात्" कथचित् शब्द लगा देना चाहिए।

अब स्याद्वाद पर भगवान् शंकराचार्य की सम्मति भी पढ़िए—

नैकस्मिन्नसंभवात्।

(वे० २। २। ३३) इस सूत्र पर शंकर जी लिखते हैं—

"एकस्मिन्नसंभवात्। नह्येकस्मिन् धर्मिण युगत्पसदसत्त्वादिविरुद्धधर्मसमावेशः संभवति शीतोष्णवत्। य एते सप्तपदार्था निर्धारिता एतावन्त एवंरूपश्चेति ते तथैव वा स्युर्नैव वा तथा स्युः। इतरथा हि वा स्युरतथा वेत्यनिर्धारितरूपं ज्ञानं संशयज्ञानवदप्रमाणमेव स्यात्।"

अर्थ—एक में (विरुद्ध धर्म) असंभव होने से। एक ही धर्मी में एक साथ सत् असद् विरुद्ध धर्मों का समावेश नहीं हो सकता। शीतत्व उष्णत्व के समान। जो यह सात पदार्थ (जीव अजीव आदि)

जैनों ने माने हैं। वे वैसे ही हैं वा नहीं हैं। वा और प्रकार से हैं इस प्रकार से अनिश्चित ज्ञान संशय ज्ञान के समान अप्रमाण ही है। अर्थात् स्याद्वाद के मानने पर प्रत्येक वस्तु का लक्षण स्वरूप अनिश्चित् संशयरूप ही रहेगा।

महर्षि दयानन्द का विचार स्याद्वाद पर देखिए—

"यह कथन (स्याद्वाद) एक अन्योन्याभाव में साधर्म्य और वैधर्म्य में चरितार्थ हो सकता है। इस सरल प्रकरण को छोड़कर कठिन जाल रचना केवल अज्ञानियों के फंसाने के लिए होता है। देखो जीव का अजीव में और अजीव का जीव में अभाव रहता ही है। जैसे जीव और जड़ के वर्तमान होने से साधर्म्य और चेतन तथा जड़ होने से वैधर्म्य अर्थात् जीव में चेतनत्व है और जड़त्व नहीं है। इसी प्रकार जड़ में जड़त्व है और चेतनत्व नहीं है।

इससे गुण-कर्म-स्वभाव के समान धर्म और विरुद्ध धर्म के विचार से सब इनका सप्तभंगी और स्याद्वाद सहजता से समझ में आता है फिर इतना प्रपंच बढ़ाना किस काम का है?" (सत्यार्थप्र० १२ समु०)

वास्तव में जैन दर्शन एक बहुत बड़ा शब्दजाल है।

आप्त परीक्षाकार श्री विद्यानन्द जी ने सांख्य, वेदान्त, योग, बौद्ध सबका वर्णन किया है पर केवल शब्दजाल मात्र ही इसमें मिलेगा, जीवित तर्क का अभाव ही है। श्री महावीर स्वामी के मत में जगत् रचयिता सर्वव्यापक सर्वज्ञ परमात्मा कोई नहीं है। परन्तु पदार्थ का एक पृथक् जीवात्मा माना गया है। यह भी एक आडम्बर पूर्ण व्यर्थ विस्तार बढ़ाने वाली कल्पना है। सब संसार का संचालन एक ही सर्वव्यापक सर्वज्ञ आत्मा है यह मान्यता सरल तथा सुबोध और युक्ति युक्त है।

जैन मत में जीव को शरीर प्रमाण माना गया है। चींटी में जीव चीटी के आकार का और हाथी में हाथी के आकार का। इस पर वेदान्त के अ० २ पा० २ के ३४, ३५, ३६ सूत्र पर आचार्य शंकर ने

बहुत विस्तार से लिखकर बताया है कि—

आत्मनो विकारादिदोषसंगादस्य पक्षस्यानुपपत्तिरिति।

आत्मा विकारी हो जाएगा इसलिए यह पक्ष उचित नहीं।

भगवान् महावीर और बुद्ध समकालीन थे। बुद्ध जी सब कुछ क्षणिक, अनित्य मानते थे। यही उनका "प्रतीत्य समुत्पादवाद" था। इसी का फेर बदल स्याद्वाद हैं। ये सब कल्पनाएँ भी श्री महावीर जी के १२ गणधरों की हैं। तीर्थंकर जी के विचारों का तो कोई प्रमाण मिलता ही नहीं।

अब श्री स्वामी जी के दार्शनिक विचार देखिए—

"प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी वे जन्म लेते अर्थात् वे तीन सब जगत् के कारण हैं। इनका कारण कोई नहीं। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फंसता है और उसमें परमात्मा न फंसता और न उसका भोग करता है"। (सत्यार्थप्रकाश समु० ८)

विना कर्त्ता के कोई भी क्रिया वा जन्य पदार्थ नहीं बन सकता। जिन पृथिवी आदि पदार्थों में संयोग विशेष रचना दीखती है वे अनादि कभी नहीं हो सकते। और जो संयोग से बनता है वह संयोग के पूर्व नहीं होता। और वियोग के अन्त में नहीं रहता।"

[स० प्र० स० ८]

श्री स्वामी जी ने भारत के दर्शनों का समन्वय किया हैं। चार्वाक की जड़ प्रकृति भी है। और सांख्य के प्रकृति पुरुष (चेतन) भी हैं। जैनों के जीव और पुद्गल भी हैं परन्तु वेदान्त का ब्रह्म भी मान्य है। संसार के पदार्थ बदलते रहते हैं अतः क्षणिकवाद भी ठीक है। स्वामी जी का त्रैतवाद सबके विवादों का एकमात्र हल है।

आचार धर्म में श्री महावीर और स्वामी जी एक मत हैं। मांस-मद्य आदि भक्षण और पान दोनों को अप्रिय है। सत्याचरणादि आचार धर्म जैन और वैदिक लोगों के एक-से हैं। हाँ, भोज्य वस्तुओं

में जैन धर्म स्मृतियों से भी कठिन है। कन्दमूल, फूल, मधु जैन नहीं खा सकते।

आर्य अपने को दोनों ही मानते हैं। आचार-विचार रीति-रिवाज दोनों के एक हैं केवल दर्शनिक भेद और उपासना पद्धति का भेद है।

जीवन के लक्ष में भी बड़ा भेद हो गया है। भगवान तीर्थंकर पूरे विरक्त थे। उन्होंने अपने अनुयायियों को जीवन की प्रत्येक दिशा में विरक्त बना दिया। जीवन नीरस हो गया, (भार बन गया) उपवास, संलेखना, अनशन आदि के द्वारा इस संसार से छुटकारा पाया जाए यही सब सोचने लगे। इस विरक्ति का भारत की राजनैतिक और सामाजिक स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ा। देशरक्षा और समाजोन्नति का विचार भूलकर सब मुक्ति की ओर को भागने लगे।

बौद्धों ने तो भारत से बाहर के देशों में भी अपने धर्म का खूब प्रचार किया परन्तु जैन अपने में ही मग्न रहे। राजनैतिक और सामाजिक चेतना का अभाव रहा; भगवान् महावीर के अनुयायियों में। भारत के किसी भी आन्दोलन में कोई विशेष नेता नहीं मिलेगा। क्रान्तिकारियों में किसी जैन युवक का नाम नहीं। स्वामी दयानन्द ने धार्मिक उपदेश के साथ-साथ राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना भी राष्ट्र में भरी जिसका प्रभाव हुआ कि लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, चौ० रामभजदत्त जी आदि अनेक प्रमुख नेता राजनीति में आर्यसमाजी रहे। क्रान्तिकारियों में श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा, भाई परमानन्द जी, भाई बालमुकुन्द जी, सरदार भक्त सिंह और पं० रामप्रसाद बिस्मिल, पं० गेंदालाल, डा० रोशनसिंह आदि अनेक बलिदानी वीर आर्यसमाजी हुए।

श्री महावीर जी के उपदेश से राष्ट्र में विरक्ति आई, नीरसता छाई और राष्ट्र हर दिशा में उदास हो बैठा। स्वामी दयानन्द जी

ने वह चेतना दी कि राष्ट्र के प्रत्येक ग्रान्दोलन में ग्रार्यसमाजी ग्रागे ग्राता रहा।

श्री महावीर जी का कार्य-क्षेत्र बहुत सीमित बिहार प्रान्त तक रहा। स्वामी जी दक्षिण भारत को छोड़कर ग्रन्यत्र सर्वत्र विचरे। महावीरजी राजवंश के थे। उनके समय भारत स्वतन्त्र था। ग्रतः उन्हें ग्रपने धर्म प्रचार में कोई कठिनाई नहीं थी। स्वामी जी राज परिवार के न थे धन, जन रहित, पराधीन देश में ग्रौर सैकड़ों मत वालों का मुकाबला जिन में दो प्रबल विरोधी मत भी थे, परन्तु सबसे संघर्ष करते हुए स्वामी जी ग्रागे बढ़े ग्रौर निराश ग्रात्महीन ग्रार्यराष्ट्र को फिर से ग्राशावान् बनाया, स्वाभिमान की ज्योति जगाई। स्वतन्त्र होने के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी। महावीर जी का मत एक देशी है, विरक्ति मात्र। श्री स्वामी जी का धर्म राष्ट्र-धर्म है, पुरातन ग्रार्यराष्ट्र का निर्माण है स्वामी जी का उद्देश्य। स्वामी जी ने जो धार्मिक सिद्धान्त रक्खे वे सार्वभौम हैं ग्रौर करोड़ों वर्ष के ग्रनुभूत हैं, तर्क ग्रौर विज्ञान से पुष्ट हैं। महावीर जी के मत में सर्वव्यापक सत्ता केवल जड़ ग्राकाश है। स्वामी जी का मान्य तत्त्व है सर्वव्यापक ब्रह्म। जैन मत में जीवात्मा को ही सर्वज्ञ ग्रौर ग्रपार शक्तिसम्पन्न माना गया है तो प्रश्न यह है कि उसकी यह सर्वज्ञता ग्रौर सर्वशक्तिमत्ता कर्मणा वर्गणाग्रों से दब कैसे गयी ? गुण ग्रौर गुणी के ग्रन्दर कभी व्यवधान नहीं होता तो सर्वज्ञ जीव ग्रौर उसकी सर्वज्ञता के बीच में ग्रज्ञानका व्यवधान कैसे ग्रा गया ?

यदि इस संसार का कोई नियामक नहीं है तो यह नियम कैसे लागू है कि शलाकापुरुष-तीर्थंकर २४, चक्रवर्ती १२, बलभद्र, नारायण ग्रौर प्रति नारायण नौ-नौ ही होते रहते हैं। ६३ ही होंगे ६४ नहीं। हमारा उत्तर तो है नियामक है चेतन ईश्वर—सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्। जैनों के स्याद्वाद के विषय में श्री

राहुल सांकृत्यायन जी (महापंडित) ने लिखा है कि यह बेलट्ठि पुत्र संजय के चार भंगो वाले अनेकान्तवाद से लिया गया है। तीन भंग और बढ़ा दिये गये हैं।

इस अधूरी तुलना के बाद यह और जान लेना चाहिए कि पूर्ण वीतराग, स्थितप्रज्ञ, केवली, योगी भगवान् महावीर तीर्थंकर भी हमारे लिए आदरणीय हैं, नमस्य हैं और यथोचित अनुकरणीय हैं। तीर्थंकर और स्वामी जी दोनों ही आर्यजाति के भूषण हैं।

[१३]

पंडित राधेश्याम जी कथावाचक

बड़े-बड़े विश्वविख्यात महापुरुषों के जीवन की बाहरी झाँकियाँ ही अधिकतर हमारे सामने आती हैं; पर उनका भीतरी जीवन भी उतना ही सुन्दर हो जितना बाहर का तो निश्चय ही वे महापुरुष धन्य हैं और विश्वपति के बिलकुल समीप भी।

किन्तु बड़े-बड़े साहित्यिक धर्मोपदेष्टा और नेताओं के भीतरी जीवन हमारे लिए अदृश्य हैं। पं० श्री राधेश्याम जी कथावाचक से बहुत घनिष्ट सम्पर्क रहने के कारण उनके स्वभाव, उनके व्यवहार, नम्रता, सौजन्य, सहृदयता और निरभिमान का बहुत अच्छा अनुभव होता रहा। बनावटीपन से वे बहुत दूर थे। अभिनेता होते हुए भी मित्रों के साथ, उनका व्यवहार सदा अनावृत रहा, स्वच्छ, निष्कपट।

वे दृढ़ सनातनधर्मी थे। हमने कई सनातनधर्मी व्याख्यानदाताओं को देखा, आर्यसमाज के कई वक्ता देखे, जिनके उपदेश उनके अपने जीवन के लिए बिल्कुल नहीं थे। उनके भाषण उनके हृदय को नहीं छू सके—श्रद्धा—भक्ति विश्वास से शून्य, आस्थारहित। परन्तु पंडित जी को हमने अपनी धार्मिक आस्था में दृढ़, विश्वास में सदा पक्का देखा, भक्तिभाव में विश्वासी, सदाचार में दृढ़, आस्था में पक्के।

साहित्यिक व्यक्ति को सहृदय अवश्य होना चाहिए, बिन संवेदनाशील हुए मनुष्य कवि नहीं बन सकता, भावना रहित व्यक्ति भावों

का चित्रण कहाँ कर सकता है ? इसीलिए पाण्डित्य और कवित्व दोनों पृथक्-पृथक् हैं ! पाण्डित्य है भाषा का और बुद्धि का चमत्कार पर कवित्व है संवेदनशक्ति और हृदय की तरंगों का सुन्दर दृश्य।

अब सुनिए पंडितजी की सहृदयता का एक उदाहरण—

पंडित जी ने एक नाटक लिखा "सती पार्वती" और उसी समय श्री नारायण प्रसाद जी बेताब ने भी इससे मिलता-जुलता नाटक लिखा 'गणेश-जन्म"।

पंडित जी के नाटक खेलने की तैयारी होने वाली थी कि पं० नारायणप्रसाद जी एकदिन उनसे मिलने आ पहुँचे। बातचीत होने लगी। बेताब जी ने कहा कि मैंने जो नाटक लिखा है उसे कम्पनी को देकर जो रुपये मिलेंगे उनसे कन्या का विवाह करना है। मगर अब आपका नाटक इसी विषय पर खेला जानेवाला है तो उसके बाद मेरा नाटक फीका हो जाएगा। कम्पनी इसे लेगी भी या नहीं, कौन जाने और मेरी आशा-लता पर ओस पड़ जाएगी। यह सुनकर पंडित जी का हृदय व्याकुल हो उठा।

कवि के सामने कन्या-विवाह की समस्या है और मेरे सामने कोई कठिनाई नहीं। सोचकर बोले—भाई बेताब जी ! आपकी आशा सफल रहे। मैं अपने नाटक को रोके रहूँगा। आपकी कन्या के विवाहोपरान्त मेरा नाटक प्रकाश में आयेगा। बेताब जी को आश्वस्त करके पण्डित जी मालिकों के पास गये और आग्रह करके अपना नाटक लौटा लाये।

ऐसी सहृदयता और त्याग भावना थी उन में। सद्भावना और सहृदयता भरी वक्तृता झाड़ना एक सरल बात है, परन्तु उसे आचरण में लाना पूर्व जन्मार्जित सुसंस्कारों का फल है।

मद्हये गुफ्तार को समझो न अख़लाकी सबूत।
ख़ूब कहना और है और ख़ूब होना और है।

पंडित जी खूब कहने वाले भी थे और 'खूब' भी थे। साधु-सन्तों

के वे बड़े भक्त थे। योगिराज बापजी, स्वर्गीय बाबा रामदास जी उनके बड़े मान्य सन्त थे।भजन-भाव में वे बड़े नियमित थे। दान भी उनका दिखावे का नहीं था। भंडारों के द्वारा जनता की जठराग्नि में अन्न की आहुति देना उन्हें बहुत पसन्द था। अष्टग्रही योग होने पर उन्होंने अपने बाग में बड़ा भारी यज्ञ कराया और तीन दिन तक सर्वसाधारण को बूँदी, पूरी, शाक, भोजन मिलता रहा। कई सहस्र व्यक्तियों ने भोजन किया, जिनमें साधु, ब्राह्मण, गैरब्राह्मण, हरिजन सब ही थे।

साम्प्रदायिक बिरादरी, मतमतान्तर की संकीर्णता से वे कोसों दूर थे।

सियाराम मय सब जग जानी।
करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी॥

उनके आचरण में उतरी हुई चौपाई थी। बरेली में जैसे सनातन धर्मी उनके भक्त थे वैसे ही आर्यसमाजी और जैन भी।

पंडितजी की आचारात्मक दृढ़ता—

एक देशी राज्य में पण्डित जी की कथा हो रही थी। नरेश और उसके कर्मचारियों तथा प्रजा पर भी कथा का रंग चढ़ रहा था। राजा साहब की एक वारवनिता सौन्दर्य में अनुपम, पढ़ी-लिखी और गायन में भी निपुण थी। पण्डित जी की रामायण महाराजा ने उसके मुख से पंडित जी को सुनवाई। पंडित जी ने उसकी कला की अत्यन्त प्रशंसा की। "वाह-वाह" के पुष्प उस पर बार-बार चढ़ाये। वह समझी भारत का यह महान् कलाकार मेरे ऊपर मुग्ध हो गया है, इस सुअवसर से लाभ उठाना चाहिए। बस अचानक एकदिन आ पहुँची पण्डित जी के वासस्थान पर। नौकर ने सूचना दी। पंडितजी तत्काल बाहर आये। देवी जी का स्वागत किया और पूछा—क्या सेवा चाहती हैं आप? कैसे इस समय कष्ट किया? वह बोली—आज रात्रि मुझे यहीं रहना है आपकी सेवा में। पण्डित जी ने कहा—आप

का ही स्थान है। हम लोग तो आपके अतिथि हैं। आप भीतर कमरे में शयन करिए मैं यहाँ बाहर सेवकों के पास चारपाई डलवा लेता हूँ। वह बोली—नहीं, नहीं, आप बाहर क्यों सोएंगे; मैं भी आपकी शय्या पर ही पड़ रहूँगी। पण्डित जी ने कहा—माता का यह अपनी सन्तान पर अनुग्रह है। पर इतने बड़े पुत्र पर माता की यह कृपा कुछ अर्थ नहीं रखती। यह सुनते ही वह झेंप गई। बोली कि ये माता-पुत्र के शब्द कैसे ? पंडित जी मेरे भाव को समझिए।

पण्डित जी ने हाथ जोड़कर कहा—देवी ! आप चाहे वारवनिता हों, सुरी हों व आसुरी, मेरे लिए तो माता हैं। मैं केवल कलाकार ही नहीं हूँ, धर्मोपदेशक भी तो हूँ। मातः नमस्तुभ्यम्। मायामयी ! ब्राह्मण पर कृपा करो। वह नारी दंग रह गई। चरणों में गिरने को हुई। पंडित जी हटकर खड़े होगये। वह भी चलती हुई कहने लगी—मैं तो परीक्षार्थ आयी थी।

उर्वशी और अर्जुन की कथा तो महाभारत में बहुत पुरानी पड़ गयी, पर यह तो नयी घटना है। चरित्र बल ही वाणी को विमल और बलवती बनाता है।

नफ़्स को जिसने पछाड़ा,
है वही तो सूरमा,
दिल को गर काबू किया,
तो जीत डाला सब जहाँ।

पंडितजी के ऊपर लक्ष्मी की पुष्पवृष्टि पर्याप्त हुई। उनका मेल भी बड़े-बड़े राजा-रईसों से था। यदि वे चाहते तो आसानी से रायसाहब या रायबहादुर की उपाधि पा सकते थे। परन्तु पण्डित जी ने अपने नाटकों में अनेक स्थानों पर कांग्रेस आन्दोलन की झलक रक्खी थी। 'भक्त प्रहलाद' नाटक में तो स्पष्ट रूप से प्रजा-प्रिय शासन का समर्थन किया था। 'वीर अभिमन्यु' में 'राजाबहादुर' का खूब मज़ाक उड़ाया था। कांग्रेस के बड़े-बड़े अधिवेशनों में वे

सम्मिलित हुआ करते थे, और पूज्यपाद महामना मालवीय जी के वे दीक्षा प्राप्त शिष्य थे। फिर भला सरकारी उपाधियों को वे क्या प्रतिष्ठा करते ?

पर जब स्वराज्य हो गया, धरती, आकाश, वन, पर्वत, सागर सब अपने बन गये, तब कई कवि और कलाकार पद्मश्री बने, राज-सभा के सदस्य हो गये; पर कथावाचक जी—

धारे दलन करीर तुम बहु ऋतु राजन पाय।
यही त्याग दृढ़ देखि के प्रिय कीन्हों यदुराय॥

वे केवल 'राम प्रिय' ही बने रहे। अपनी सरकार में उनका बहुत अच्छा परिचय था। जरा-से संकेत से वे सरकारी मान पा सकते थे। मगर मान की माँग उनकी शान के खिलाफ थी। वे अपनी तबियत के शहंशाहों में थे। रही सरकार—उसका तो हाल यह है—

बोझ लदे हय हाथिन पै
खर खात खड़े नित जात खुजाये।
मानसरोवर में बिहरैं बक,
शंकर मार मराल उड़ाये॥

अस्तु। पं० राधेश्याम जी वर्षों तक जनता पर राम-रस की वर्षा कर राम के समीप पहुँच गये। आज तो—

आँखों में उनका जल्वा है,
ओठों पै हैं उनके अफसाने।

❋

[१४]

वेद और स्मृतियाँ

वेद और स्मृतियों का सम्बन्ध बहुत गहरा है। श्रुति स्मृति से समर्थित कर्म ही करणीय माने जाते हैं। श्रुति प्रथम है, स्मृति पश्चात्। महाकवि कालिदास के शब्दों में—

श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्।

राजमहिषी सुदक्षिणा गोचारण को जाते हुए महाराज दिलीप के पीछे इस प्रकार चली जैसे वेदार्थ का अनुसरण स्मृतियां करती हैं। वेदार्थ विपरीत स्मृति को तो मनु जी ने अमान्य ही ठहराया है। यथा—

या वेदबाह्याः स्मृतयोः याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥

—मनु० १२।९५

वेद विरुद्ध स्मृतियां और कुदर्शन परलोक में सब निष्फल हैं। क्योंकि वे तमोगुण युक्त हैं। वेदानुसारिणी स्मृतियों को प्रमुख माना गया है। यह स्मृति मानवता के विधान में सबसे पहला विधान है। स्मृतियों के बनने का कारण है सूक्ष्म वेदार्थ को स्थूल रूप से स्पष्ट करके समझाना।

स्मृतियों का विषय है वर्णाश्रम के कर्त्तव्य बताना। मनुष्य को संस्कारों के द्वारा सुसंस्कृत बनाना। सामाजिक और शासनिक नियम निर्देश करना, व्यवाहर रीति-नीति का उपदेश देना और भूल-चूक से हुई धर्मविपरीत क्रिया का प्रायश्चित बताना, भक्ष्याभक्ष्य

का निर्णय करना। नैतिकता और सदाचार का जीवन में प्रयोग करते हुए ईश्वर की उपासना पर सभी स्मृतियों ने बल दिया है। पूर्व-जन्म के सिद्धान्त का सब ही स्मृतियाँ समर्थन करती हैं। इस जन्म में चालाकी से कोई राजदण्ड से बच भी जाए परन्तु तनिक-तनिक-सी भी भूलों का दण्ड अनेक जन्मों तक मिलता रहेगा। मृत्यु के उपरान्त भी जीव का सूक्ष्म शरीर भले-बुरे कर्मों के संस्कार लिये हुए दूसरे शरीरों में जाकर अच्छे-बुरे फल भोगता है। भले-बुरे कर्मों के फल बताकर, दैवी-दण्ड का भय दिखाकर मनुष्य को सदाचार में प्रवृत्त करना सब ही स्मृतियों का लक्ष्य है, उद्देश्य है। कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विवेचन स्मृतियों में विस्तार के साथ मिलता है।

अब तक ६० स्मृतियां प्रकाश में आ चुकी हैं सम्भवत: और भी शेष हों। अब तक ५४ स्मृतियां छपाकर श्रेष्ठिवर श्री मनसुखराय जी मोर ५ क्लाइव रोड, कलकत्ता, उदारतापूर्वक नि:शुल्क विद्वानों को भेंट कर चुके हैं। उनकी भेजी निम्नलिखित स्मृतियां मेरे सामने हैं—

गौतमस्मृति, वृद्धगौतमस्मृति, यमस्मृति, लघुयमस्मृति, बृहद्-यम स्मृति, अरुणस्मृति, पुलस्त्यस्मृति, बुधस्मृति, वसिष्ठस्मृति, वृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृति, ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्यसंहिता, कश्यपस्मृति, व्याघ्रपादस्मृति, कपिलस्मृति, वाधूलस्मृति, कण्वस्मृति, दालभ्य-स्मृति, आंगिरसस्मृति, भारद्वाजस्मृति, मार्कण्डेयस्मृति, लैगाक्षि-स्मृति।

उक्त २७ स्मृतियों में कुछ तो बहुत छोटी हैं और कुछ पर्याप्त बड़ी हैं।

इन सबमें ही वर्णाश्रमधर्म, राजधर्म और वैष्णव, शैवादि सम्प्रदायों के कर्मों का विधान है। यज्ञ और वेद के स्वाध्याय पर सब ने ही बल लगाया है। मार्कण्डेयस्मृति में वेद की बहुत प्रशंसा की गई है। यथा—

वेदवत्तरणोपायो नान्योऽस्ति जगतीतले।
विजानतो ब्राह्मणस्य तस्मान्नित्यं द्विजोत्तमैः।
अध्येतव्यः प्रयत्नेन वेदो नारायणात्मकः॥

अन्य सब स्मृतियों में भी प्राणायाम ब्रह्मचर्य, उपवास, श्राद्धदान गोदान, गोसेवा को बहुत महत्त्व दिया गया है। ब्राह्मणों की महिमा से सब स्मृतियाँ भरी हुई हैं किन्तु ब्राह्मण कैसा होना चाहिए यह देखकर ब्राह्मण की महिमा का वर्णन उचित ही विदित होता है।

देखो ब्राह्मण का स्वरूप—

ये क्षान्तदान्ताश्च तथाभिपूर्णः
जितेन्द्रियाः प्राणिवधे निवृत्ताः।
प्रतिगृहे संकुचिता गृहास्थास्ते
ब्राह्मणस्तारयितुं समर्थाः॥

—वृद्धगौतमस्मृतिः[1]

उक्त सब ही स्मृतियों के अनुसार ब्राह्मणत्त्व बड़ी साधनालब्ध है। ब्राह्मण होना घोर तप है। ऐसे ब्राह्मण समाज में मान्य होने ही चाहिएँ।

वेद की प्रशंसा में वृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृति १२ वें अध्याय में कहा है—

न वेदशास्त्रादन्यत्तु किञ्चिच्छास्त्रं हि विद्यते।
सर्वं विनिःसृतं शास्त्रं वेदशास्त्रात् सनातनात्॥[2]

सब विद्याओं का मूल और सनातन शास्त्र वेद को ही बताया गया है—

गौ और पञ्चगव्य की प्रशंसा भी बहुत मिलती है। तुलसीदल, दर्भ, (कुश) कमल को बहुत पवित्र माना गया है। सन्ध्या, अग्निहोत्र

---

१. ६।१७९
२. १२।१

को अनिवार्य रूपेण कर्त्तव्य माना गया है।

मुक्ति प्राप्ति का साधन केवल वेद को माना गया है। देखिए मार्कण्डेयस्मृति—

वेदोक्तमार्गभिन्नेन पथा यो मुक्तिमुत्तमाम्।
कर्मादिनाऽपि वदति सुमहापापकर्मणा।।
संप्राप्य चित्ते मालिन्यं वदत्येवेति तत्त्वहृत्।
वेदेन तुल्यं वदति पौरुषं ग्रन्थजालकम्।।
वेदोक्तमार्गभिन्नेन यथा वै येन केनचित्।
मुक्तोऽभूद् भवतीत्येतद् वाक्यं हि मृगतृष्णिका।।

उक्त श्लोक ऋषि दयानन्द के इस वाक्य का पूरा समर्थन कर रहे हैं—

"अच्छा तो वेदमार्ग है, जो पकड़ा जाए तो पकड़ो, नहीं तो सदा गोता खाते रहोगे।"—स० प्र० समु० ११

इन स्मृतियों में वेदज्ञान से अधिक वैदिक सदाचार को माना है। जैसा कि—

आचार हीनं न पुनन्ति वेदाः,
यद्यप्यधीताः सह षड्भिरंगैः।
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति,
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः।।
गायत्रीमात्रसन्तुष्टः श्रेयान् विप्रः सुयंत्रितः।
नायंत्रितश्चतुर्वेदः सर्वाशी सर्वविक्रयी।।[1]

चारों वेदों को जानने वाला भी यदि जितेन्द्रिय नहीं है तो वह ब्राह्मण माननीय नहीं है।

पदे-पदे तपस्या पर बल दिया गया है। वेद विरोधी नास्तिकों का खण्डन भी इनमें है। वेद विरोधियों की शिक्षा को आसुरी बताया गया है।

---

१. वृहद्योगीयाज्ञवल्क्यस्मृति ११/१९, २०।

बौद्धः कपिलकुहकौ लोकायतिकभिन्नकाः।
वेदबाह्यास्तथान्ये तु तामसा अशिवास्तु ते॥
नैरात्म्यवादकुहकैर्मिथ्यादृष्टान्तहेतुभिः।
वेदशास्त्रन्तु वाधन्ते पौरुषेयास्तु ते स्मृताः॥
आसुरेयाः पाशुपता बृहस्पतिकृतास्तु ये॥[1]

इन अनात्मवादियों के मतों का युक्तियुक्त खण्डन 'सत्यार्थप्रकाश' में किया गया है।

जातिप्राधान्यकं नास्ति एकजातिसमुद्भवः।
न वेदा नैव यज्ञाश्च न दानं न तपांसि च॥
न कार्यं नैव चाकार्यं सर्वं कुर्यादशंकया।
एतदासुरकं भावं समाश्रित्य विनश्यति॥[2]

क्लास-लैस (Classless) समाज वनाना [वर्णाश्रमहीन] सैकुलरइज्म, धर्म विहीनता, अनात्मावादिता ये सब आसुरी भाव हैं और विनाश की ओर ले जाने वाले हैं। देश में साम्यवादी, वामपंथी आदि राजनैतिक दल आज यही विनाशकारी विचार फैला रहे हैं और इसका फल दीख रहा है देश की दुर्दशा। वशिष्ठस्मृति में रामानुजी चक्रांकित वैष्णव मत का विधान भी है—

शूद्रादीनां तु रुद्राद्या अर्चनीयाः प्रकीर्तिताः।
यत्तु रुद्रार्चनं प्रोक्तं पुराणेषु स्मृतिष्वपि॥
तदब्रह्मण्यविषयमेवमाह प्रजापतिः।
रुद्रार्चनं त्रिपुण्ड्रञ्च यत् पुराणेषु गीयते।
क्षत्रविट्शूद्रजातीनां नेतरेषां तदुच्यते॥
तस्मात्त्रिपुण्ड्रं विप्राणां न धार्यं मुनिसत्तमाः।
यदज्ञानाच्च विभ्रियुः पतितास्ते न संशयः॥

१. वृहद्यो १२।९-११, २. वही १२।१६, १७।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं तु विप्राणां सततं श्रुतिचोदितम् ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रो मृदा शुभ्रो ललाटे यस्य दृश्यते ।।
सर्वपापविशुद्धात्मा स याति हरिमन्दिरे ।
स्नानं दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
भस्मी भवन्ति तत्सर्वमूर्ध्व पुण्ड्रं विना कृतम् ।।[1]

निश्चय ही ये श्लोक किसी कट्टर रामानुजी सम्प्रदाय वाले की गढ़न्त हैं ।

होमानि नैव संतप्तचक्रमादाय वैष्णवम् ।
दक्षिणे बाहुमूले तु दग्ध्वा कर्म समाचरेत् ।।[2]

वशिष्टस्मृति में यह सब लीला चक्रांकितों की है, वेदों में इन बातों का पता भी नहीं और ना ही मनुस्मृति में ऐसे विधान हैं ।

वेदों के तो कर्त्तव्य कर्म वे हैं जिनसे मन पर प्रभाव पड़े, आत्मा सुसंस्कृत हो । शारीरिक चिह्नों से क्या लाभ है ? निश्चय ही ये साम्प्रदायिक बातें तब कही गईं जबकि रामानुजी मत चल चुका था।

वशिष्ठस्मृति का यह श्लोक देखिए, कितनी संकीर्णता का है—

ब्राह्मणैनैव मृद्धार्या न भस्म न च चन्दनम् ।
यद्यबुध्या तु बिभृयात् प्रायश्चित्ती भवेत्तु सः ।।[3]

भला बताइए कि भस्म व चन्दन धारण करने में क्या पाप है, जो प्रायश्चित करना पड़े ?

शैवशाक्त विद्वानों का तो यह घोर विरोध है । अब एक बात और भी विचारणीय है । इन स्मृतियों में कुछ जातियों में ब्राह्मणों को जाने से रोक दिया गया है । यथा—

भिल्लानां च किरातानां पुलिंदानां प्रहारिणाम् ।
यवननां च हूणानां पर्परार्णां दुरात्मनाम् ।।

---

१. वशिष्ठस्मृति १।१७-२१ ।

२. वशिष्ठस्मृति १।३८

३. वशिष्ठ स्मृति १।२३

स्वर्णकारस्य तुच्छस्य रथकारस्यास्य पापिनः।
सूतस्यायस्करस्यापि पौरोहित्याच्छताधिकम्॥
रजकस्य तथा तत्त्वं सम्प्राप्यैवदिनत्रयम्।

ये श्लोक मार्कण्डेयस्मृति के हैं। स्वर्णकार और रथकार (बढ़ई) आज ऊंची जातियों में ही गिने जाते हैं। फिर न जाने इन श्लोकों में किन स्वर्णकार और रथकारों का वर्णन है। वेद तो कहता है—

"धीमानो रथकाराः" रथकार बुद्धिमान् हों परन्तु यह स्मृति इनकी गणना नीचों में करा रही है। मीमांसा ६।१।४४ में रथकार को यज्ञाधिकारी माना है। पुलिन्द, भील, हूण, यवन आदि जातियाँ ब्राह्मणों द्वारा छोड़ दी गईं और उन्हें मुसलमानों ने अपना लिया और अब उन्हें ईसाई अपना रहे हैं। यदि इन जातियों में कुछ बुराई थी तो ब्राह्मण लोगों को उसमें सुधार करना था। इन स्मृतियों की ऐसी आज्ञाओं से हिन्दूराष्ट्र की बहुत हानियाँ हुई हैं और हो रही हैं।

इन सभी स्मृतियों में श्राद्ध और दत्तकपुत्र पर विस्तार से लिखा गया है।

इनमें मूर्तिपूजा, ग्रहपूजा, तीर्थयात्राओं का भी वर्णन है। श्री हनुमान् जी की पूजा का कहीं पता नहीं चलता। विष्णु, शिव, सूर्यादि की पूजा ही प्रायः वर्णित है।

वृहद्योगीयाज्ञवल्क्यस्मृति दशम अध्याय में ग्रहपूजा के लिए वेद मन्त्र दिये हैं जिनमें **"शन्नो देवीरभिष्टये"** यह मन्त्र शनैश्चर की पूजा का बताया गया है और **"उद्बुध्यस्वाग्ने"** बुध की पूजा का। परन्तु इन मन्त्रों के अर्थ से इस ग्रहपूजा का दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। एक का देवता 'आपः' है दूसरे का 'अग्निः, । यह सब कल्पना ग्रहपूजा वालों की है।

एक बात ध्यान देने योग्य है कि आंगिरस स्मृति द्वितीय अध्याय में सब कर्मकाण्ड वेदोक्त मन्त्रों से ही करने बताये हैं। पुराणोक्त

मन्त्रों का निषेध किया गया है। देखिए—

> **नः वैदिकः पुराणोक्तं कर्माणि मनुभिश्चरेत् ।**
> **वेदोक्तैरेव तैर्मन्त्रैर्निखिलानि समाचरेत् ।।**
> **कर्ममध्ये पुराणोक्तमन्त्रोच्चारणमाऽऽताः ।**
> **न पूयेत्तु वैदिकं कर्म तस्मात्तु न तथा चरेत् ।।**
> **पुराणोक्तेषु वै सत्सु लौकिकेषु तथा चरेत् ।।**

अब पौराणिक भाई विचार करें कि यज्ञ वैदिक कर्म है तो उसे मार्कण्डेय पुराणोक्त दुर्गासप्तशती के श्लोकों से नहीं करना चाहिए गीता के श्लोकों और रामायण की चौपाइयों से हवन करना स्मृति विरुद्ध ठहरता है या नहीं ? मूर्तिपूजा आदि लौकिक कर्मों में ही पुराणोक्त मन्त्रों का प्रयोग किया जा सकता है।

कीर्तन पंथियों को भी स्मृति में ठीक नहीं समझा गया है। देखिए—

> **कुशास्त्रभाषा शास्त्राणि प्रामाण्येन न विश्वसेत् ।**
> **गानशास्त्राणि कृतस्वानि नृत्यशास्त्राणि यानि वा ।।**
> **सभारञ्जकशात्राणि—आदि लौगाक्षिस्मृति ।।**[1]

इनमें फंसे ब्राह्मणों को वेदवाह्य वताया गया है "**वेदमन्त्रबहिष्कृताम्** ।

इसी प्रकार लौगाक्षिस्मृति ने भाषा ग्रन्थों के पढ़ने का (स्वाध्यायार्थ) निषेध किया है। यह कथन भी श्री स्वामी जी के तृतीय समुल्लास के इस वाक्य से मिलता है—

"तुलसीदास कृत रामायण, रुक्मिणी मंगलादि सर्व भाषा ग्रन्थ ये सब कपोलकल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं।"

अब मिलाइए लौगाक्षि के वचनों से—

---

१. पृष्ठ ३६४

लौकिका: प्राकृताभाषा पामरीया परोत्कटः।
अपि साक्षाद्देवदेवगुणवृन्दसुबोधकाः ॥
प्रयत्नात्तद्दिने दूरात् त्यक्तव्याः स्युर्हि वैदिकैः।
वेदसाम्यं प्रकथितं वेदस्यैव महर्षिभिः ॥
नान्यस्य यस्य कस्यापि कल्पसूत्रादिकस्य च।
एवं सति पुराणादेस्तत्तु दूरत एव हि ॥"[1]

वेद के सामने कल्पसूत्रादि कुछ नहीं फिर पुराणों की वात तो बहुत दूर है।

ये विचार ऋषि दयानन्द की वेद शास्त्र सम्वन्धी मान्यताओं-के पूर्ण पोषक हैं। और देखिए—

तद्व्याख्यानां तु मन्त्रत्वे यथाकाष्ठमृगस्य वै।
मृगत्वव्यपदेशोऽयं तथैवेति हि निर्णयः ॥
एवं सति पुनस्तत्तद्भाषाग्रन्थस्य वेदता।
अतिपामरलोकोक्तिकल्पिता सातिर्गर्हिता ॥
तदुच्चारणतः सद्यः श्रवणाद्वा द्विजन्मनाम्।
जातिभ्रंशो भवेन्नृणां वेदानर्हत्वदायकः ॥

वैदिकाख्या नाममात्राद्भाषाग्रंथकृतश्रमाः।
न ब्राह्मणः समः कश्चिन्न तु वेदसमः परः ॥[2]

उक्त श्लोकों में तो ऋषि दयानन्द का हृदय बोल रहा है। विष्णु सहस्रनाम, गोपालसहस्रनाम, महिम्नःस्तोत्र आदि का पाठ करने वाले ब्राह्मण सब व्यर्थ श्रम करने वाले पामर ठहरते हैं ।

इन स्मृतियों में तीर्थों की महिमा बड़े विस्तार से कही गयी है परन्तु यह भी कह दिया गया है कि—

---

१. लोगाक्षिस्मृति पृ० ३८५
२. लौगक्षस्मृति पृ० ३८५

आत्मानदी भारत पुण्यतीर्थम्
नत्वा तीर्थं सर्वतीर्थप्रधानः ।
श्रुत्वा तीर्थं सर्वमात्मन्यथोच्चैः
स्वर्गो मोक्षः सर्वमात्मन्यधीनम् ।।[1]

यहाँ सर्वोपरि तीर्थ आत्मज्ञान को ही बताया है । सब स्मृतियों में श्राद्ध का वर्णन वहुत विस्तार से मिलता है । श्राद्धयोग्य ब्राह्मण भी बहुत उच्चकोटि के ब्राह्मण हो ठहराये गये हैं । क्षौरकर्म, शिखा-धारण, यज्ञोपवीत के नियम बहुत विस्तार से कहे हैं । प्रायश्चित्त विधानों का बहुत विस्तार है ।

संस्कारों की विधियां विस्तार से बतायी गई है । स्त्रियों को पतिव्रत धर्म की शिक्षा दी गई है । श्राद्ध और यज्ञों में मांस का विधान करके भी मांस भक्षण का यत्र तत्र निषेध ही किया गया है । पर-स्त्रीगमन, सुरापान, परद्रव्य-हरण आदि सबको निन्द्य पाप, पातक ठहराया है । स्मृतिसंदर्भ के सम्पादकों का कहना है कि साठ के अतिरिक्त ये स्मृतियां और मिली हैं :—

कोकिलस्मृति, अगस्त्यस्मृति, गरुड़स्मृति, कूर्मस्मृति, नृहरि-स्मृति, पुष्करस्मृति, और्वस्मृति, शिवस्मृति, सूतस्मृति । नारद-स्मृति और मनुस्मृति इनसे अतिरिक्त हैं ।

महाभारत के अनुशासन पर्व और शान्तिपर्व भी एक प्रकार से स्मृतियाँ ही हैं ।

महाभारत के अनुशासनपर्व अध्याय ११५ में मांस भक्षण का घोर विरोध किया गया है यथा—

यो येजेताश्वमेधेन मासि मासि यतव्रतः ।
वर्जयेन्मधुमांसं च सममेतद्युधिष्ठिर ।।
न भक्षयति यो मांसं न च हन्यान्न घातयेत् ।
तन्मित्रं सर्वभूतानां मनुःस्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।।

१. वृद्धगौतमस्मृति २०।२३

यह अध्याय माँस-भक्षण निषेध से भरा पड़ा है।

जन्मपरक जातियों और वर्णसंकरों को मानते हुए भी तप और सदाचार को बहुत महत्त्व दिया गया है—।

क्षान्ती दान्ती जितक्रोधी जितात्मानं जितेन्द्रियम्।
तमेव ब्राह्मणं मन्ये शेषाः शूद्रा इति स्मृताः॥
अग्निहोत्रव्रतपरान् स्वाध्यायनिरतान् शुचीन्।
उपवासरतान्दान्तास्तान् देवा ब्राह्मणा विदुः॥
न जातिः पूज्यते राजन् गुणाः कल्याणकारकः।
चाण्डालमपि व्रतस्थं तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥

—वृद्धगौतमस्मृति २१।६-८

इससे अधिक और आर्यसमाज क्या कहता है? वैदिक कर्म-धर्मरत सदाचारी ही ब्राह्मण हो सकता है कर्म धर्म हीन नहीं। सदाचारी कर्मकांडी इन सब स्मृतियों में तथा मनुस्मृति और पराशरस्मृति में भी वेदानुसारी आदेश कितने हैं और विरुद्ध कितने हैं यह निर्णय करना बहुत कठिन काम है। स्मृतियों के एक-एक श्लोक से वेद मन्त्रों का मिलान करना होगा। यह परिश्रम साध्य विषय है और अर्थ साध्य भी। आर्यसमाजों की रुचि अब धार्मिक साहित्य के पढ़ने में है नहीं अतः ऐसे ग्रन्थ कोई प्रकाशित भी क्यों करने लगा? सभा संस्थाएँ भी इस ओर उदासीन हैं।

बस मीमांसा दर्शन की एक कसौटी है—

विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्। १।३।३

यदि वेद से स्मृति वचन का प्रत्यक्ष विरोध हो तो उस वचन की उपेक्षा कर दो। यदि विरोध नहीं है तो अनुमान कर लो कि वेद में ऐसा विधान होगा ही।

अब इन स्मृतियों में अनेक विषय हैं जो वेदों में नहीं मिलेंगे। जैसे मूर्तिपूजा, ग्रहपूजा, भौतिक तीर्थ सेवन आदि।

और—संस्कार, यज्ञ, तप, सदाचार, ईश्वरोपासना, इत्यादि पंच-

महायज्ञ—ये सब वेदानुमोदित हैं।

इन स्मृतियों में आर्यसमाज की मान्यताओं का भी पर्याप्त समर्थन मिलता है। और वैसे तो ये सब पौराणिक रीतियों का ही प्रतिपादन करती हैं फिर भी यह आर्यसाहित्य है। संग्रहणीय है और पठनीय भी। हमारी संस्कृति का इनसे बहुत बड़ा सम्बन्ध है। आवश्यकता इस बात की है कि इस समय सब स्मृतियों से छाँटकर एक आर्य-स्मृति वा मानवस्मृति बना दी जाए जो पूरे राष्ट्र पर लागू हो सके।

वैसे तो इस समय मनुस्मृति और पराशर स्मृतियाँ ही हिन्दू ला बनी हुई हैं।

मानव आचार के ऊपर जैन, बौद्धों ने भी बहुत कुछ लिखा है। सन्तों ने भी अनेक वचन कहे हैं। इन सबका निचोड़ जो सदाचार है वह तो मानवमात्र को मान्य होना चाहिए। आर्य सम्प्रदायों के ग्रंथों में यह विशेष है कि वे सब सदाचार, मनः शुद्धि पर बल देते हैं।

"आत्मौपम्येन भूतानां," "सर्वभूतहिते रता:"

यह सबकी घोषणा है। वैदिक धर्मी, जैन, बौद्ध, सिक्ख, सन्त-मतादि सब आर्यों का सार्वभौम-कल्याण, चिंतन, तप-योग, सत्य, न्याय लक्ष्य है। आर्य धर्म किसी एक व्यक्ति का पल्ला पकड़कर तर जाने का उपदेश नहीं देते किन्तु सार्वभौम सदाचार के, कल्याण के लिए नियमों को ग्रहण कर जीवन में ढालने का उपदेश देते हैं। उनकी उपासना का लक्ष्य भी आत्मशुद्धि ही है।

वेदों के सार्वभूत कल्याणकारक उपदेशों का स्पष्टीकरण देश, काल के अनुसार करना ही स्मृतियों का उद्देश्य है, ऐसा ही वैदिक विद्वान् समय-समय पर करते रहे हैं। हमारा श्रौत और स्मृति उपदेश सार्वभौम है, किसी लघु सीमा में बंधा हुआ नहीं है। श्रुति स्मृति का यही अटूट सम्बन्ध है।

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रस्तु वै स्मृतिः।

[१५]

वेदों में पुनरुक्ति दोष नहीं

न्याय दर्शन अध्याय २ आ० २ सूत्र ५६ में कहा गया है—

तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः।

शब्दप्रमाण, श्रुति का प्रमाण, प्रमाण नहीं, अनृत (असत्य) व्याघात (परस्पर विरोध) और पुनरुक्ति दोष के कारण। मीमांसा दर्शन में भी यह आशंका उठाई गई है और दोनों दर्शनों में समाधान यही किया गया है कि ऐसा गुणवाद के कारण होता है।

गुणार्थेन पुनः श्रुतिः। मी० १।२।४१

अनुवादोपपत्तेश्च । न्या० २।२।५६

गुणार्थ—गुणवाद के कारण पुनः कहा जाता है।

अनुवाद की उपपत्ति होने से। फिर भी अगले सूत्रों में गुणवाद और अनुवाद के भेद बताये हैं और पुनरुक्ति दोष का निवारण किया है। परन्तु साहित्यिक दृष्टिकोण से पुनरुक्ति दोष कहाँ होता है?

प्रयोजनशून्यत्वे पदवाक्योः पुनः पुनः कथनं पुनरुक्तिदोषः।

बिना प्रयोजन के शब्द वा वाक्य का बार-बार बोलना पुनरुक्ति दोष है, परन्तु प्रयोजनवश बोलना दोष नहीं है। जहाँ गुणवाद वा अर्थवाद प्रयोजन है वहाँ दोष नहीं है। लोकभाषा में ही देखिए—'जल्दी, जल्दी अर्थात् बहुत शीघ्र। अवश्य, अवश्य—अर्थात् करना बहुत आवश्यक है। आदि-आदि।

मीमांसा में ब्राह्मणग्रन्थों की विधियों के उदाहरण देकर समझाया गया है कि यह अर्थवाद है किन्तु यहाँ प्रश्न वेदों का है। वागाम्भृणी सूक्त ऋग्वेद में भी है और अथर्व में भी पुनः पठित है। पुरुष सूक्त ऋग्वेद और अथर्व दोनों में है। एक ही वेद में कई मन्त्र बार-बार आये हैं। "**अश्वत्थे वो निषदनम्**" मन्त्र यजुः १२।७९ में है और ३५।४ में भी। यजुः, साम और अथर्व में अधिकतर ऋग्वेद के ही मन्त्र हैं। यह पुनरुक्ति क्यों है ?

उत्तर में निवेदन है वेदराशि ऋग्वेद, यजुः, साम—पद्य, गद्य, गीति तीन प्रकार की है, परन्तु समूह रूपेण एक ही है—**एक एव पुरा वेदः**। अथर्व भी इन तीनों प्रकारों में आ जाता है। परन्तु व्यवहार कर्मकाण्ड में प्रकरणवश इन मन्त्रों को दुहराया गया है। व्यावहारिक प्रकरण में ईश्वर ने वेदराशि को चार भागों में विभक्त किया है। जहाँ उस कार्य में आवश्यकता पड़ी वह मन्त्र दुहराया गया है।

जैसे "**अश्वत्थे वो निषदनम्**" १२।७९ में ओषधियों के सम्बन्ध में आया तो ३५।४ में जीव के सम्बन्ध में भी लागू हुआ। कहीं प्रकरण है समावर्त्तन का, तो कहीं राजतिलक का। इन में कुछ विधियाँ एक-सी भी आ जाती हैं। अतः उन मन्त्रों को दुहराया गया है। लोक में भी व्याख्यान देते हुए एक ही पद को, शेर को कई बार भी बोलना पड़ता है। पुनरुक्ति वह होगी जिसका विना प्रकरण अनावश्यक प्रयोग किया जाये। पुरुष सूक्त, वागाम्भृणी सूक्त, इतने आवश्यक हैं कि इनका ज्ञान सर्वसामान्य में फैलाया जाए। अतः कोई एक ही वेद का अध्ययन करे तब भी इसका ज्ञान तो उसे होता जाए। गायत्री मन्त्र भी तीनों (ऋ० यजुः सा०) में इसीलिए पढ़ा गया।

यह सबको जानना आवश्यक है। अथर्व में भी जो संहिता वा शाखा (क्योंकि 'शन्नो देवी' से प्रारम्भ) होती है उसमें प्रथम गायत्री उच्चारण का विधान है अतः श्री स्वामी जी ने ऋगवेदादि-

भाष्यभूमिका में लिखा है कि गायत्री मन्त्र चारों वेदों में है। पुरुष-सूक्त अथर्व में भी है, एक-दो शब्द बदलकर। मन्त्र संख्या भी ऋग और अथर्व के पुरुषसूक्त में उतनी नहीं जितनी की यजुर्वेद में है। भगवान् को बताना यह था कि इस प्रकार भी पाठ हो सकता है और इस प्रकार भी।

"सहस्रशीर्षा" भी "सहस्रबाहुः" भी। यजुः में "**श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या**" है। अथर्व में नहीं। क्योंकि वहाँ यज्ञ का प्रसंग था यहाँ नहीं। अतः प्रसंगवशात् कर्मकाण्ड के कारण जहाँ पुनः पाठ है वह सार्थक है, अतः दोष नहीं। और उस उपदेश को अत्याव-श्यक जानकर पुनः पुनः पाठ है। यथा गायत्री **मन्त्र**।

"**तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु**", "**तं वो जम्भे दध्मः**" आदि अनेक स्थानों पर एक ही वाक्य बार-बार दोहराया गया है। "**राष्ट्रदा-राष्ट्रम् मे देहि**" बार-बार कहा है। और अनेक स्थानों में ऐसा ही है। कारण यह गीत है और गीतों की टेक बार-बार कही जाती है। लौकिक गानों में भी देख लीजिए। 'जय जगदीश हरे' बार-बार कहा गया। इसी प्रकार '**कस्मै देवाय हविषा विधेम**' आदि टेकें हैं। निष्प्रयोजन, निरर्थक पुनः पाठ कहीं नहीं है अतः पुनरुक्ति दोष नहीं माना जा सकता।

"**आयुर्यज्ञेन कल्पताम्**" यह मन्त्र कुछ शब्दान्तर भेद से यजुः ९।२१, १८।२९, २२।२३ में आया है। कारण ९वें में वाजपेय यज्ञ में आवश्यकता थी। १८ वें में कल्पयज्ञ में और २२ वें में अश्वमेध में। इसलिए शब्द भेद है कि कहाँ कैसी और कितनी प्रार्थना की आव-श्यकता है वहाँ वे शब्द पठित हुए हैं।

न्याय दर्शन में—"नानुवादपुनरुक्तयोर्विशेषः शब्दाभ्यासोपपत्तेः २। १। ६५ अनुवाद और पुनरुक्त में कोई विशेषता नहीं है दोनों में ही शब्द को बार-बार बोला जाता है।

इसके उत्तर में अगले सूत्र में कहा है—

शीघ्रतरगमनोपदेशवदभ्यासान्नाविशेषः ।

बहुत शीघ्र जाने के लिए जल्दी-जल्दी यह दो बार बोलना विशेषता है । इसी सूत्र पर श्री वात्स्यायन मुनि कहते हैं—

नानुवादपुनरुक्तयोरविशेषः । कस्मात् ।
अर्थभेदाभ्यासस्यानुवादभावात् ।"
समानेऽभ्यासे पुनरुक्तमनर्थकम् ।
अर्थवानभ्यासोऽनुवादः । शीघ्रतरगमनोपदेशवत् ।

अनुवाद और पुनरुक्त में विशेषता है । क्योंकि सार्थक अभ्यास (पुनः कथन) अनुवाद है । समान अभ्यास में पुनरुक्त अनर्थक है । सार्थक अभ्यास अनुवाद है । बहुत शीघ्र गमन के उपदेश के समान । **यथा शीघ्रं शीघ्रं गच्छ ।'** जल्दी-जल्दी चलो अर्थात् बहुत शीघ्र । कहीं कहीं इस प्रकरण में वही पीछे कहा उपदेश फिर आवश्यक होता है अतः पुनः पाठ आता है । जैसे कि गायत्री मंत्र का यजुः में कई बार पाठ किया गया है ।

※

[१६]

उत्तरप्रदेश के बहराइव नगर में विजयतीर्थ के दर्शन

उत्तर प्रदेश के बहराइच नगर में मुसलमानों ने एक बड़ा भारी मुस्लिम तीर्थ स्थान बना रखा है—"गाज़ी मियां की ज़्यारत" यहाँ विशाल भवन बने हुए हैं और गाजी मियां (मसऊद) की समाधि संगमरमर की बनी हुई है। सहस्रों रुपये की श्राय इस ज़्यारत की है जिसका अधिकांश मूर्ख अन्धविश्वासी हिन्दुओं की जेब से आता है। ज्येष्ठ मास के प्रथम रविवार को यहाँ मेला लगता है जो कई दिन चलता है। मुसलमानों के त्योहार मुसलमानी महीनों और मुसलमानी तारीखों से सम्बद्ध होते हैं। और इस्लामी मास और तिथि स्थिर नहीं होते। क्योंकि उनका सम्बन्ध चन्द्र से होता है, सूर्य से नहीं। ईद कभी ग्रीष्म में होगी तो कभी जाड़ों में, कभी वर्षा में। यही दशा उनके उर्सों (कबरों पर मेलों) की होती है परन्तु बहराइच का उर्स स्थायी होता है, ज्येष्ठ मास के प्रथम रविवार को। रविवार भी हिन्दुओं का ही मान्य दिन है जैसे मुसलमानों का शुक्र (जुम्मा) ऐसा क्यों है ? वस्तुत: यह कब्र नकली है। मसऊद यहां से कुछ दूर पर मारा गया था। यहां पर तो बालसूर्य का एक कलापूर्ण मंदिर था और कुण्ड था जिसमें चर्मरोगी स्नान करके लाभ उठाते थे। यहाँ गन्धक मिश्रित मिट्टी थी। और अब भी बहुत गहराई पर है।

मुसलमानों ने वह मंदिर तोड़कर यह बनावटी समाधि बना दी। सूर्यकुण्ड पाट दिया। अब कब्र का धोवन-पानी रोगियों को दिया जाता है। और बालादित्य के स्थान पर बालेमियां कर दिया है। मेला जैसा कि ज्येष्ठ में मंदिर पर लगता था वैसा ही रहने दिया

और मूढ़ हिन्दू मेले में पूर्ववत् आते रहे। मुसलमानों ने अपनी आय चालू करने के लिए कुफ्र पर इस्लाम का लेबिल लगा दिया और अन्ध विश्वासों से लाभ उठाते रहे और उठा रहे हैं।

इस नगर का नाम भी सूर्यभगवान् के नाम पर ही था "बृहदादित्य" इसका अपभ्रंश रूप है बहराइच। अब विजयतीर्थ की बात सुनिए—यहाँ से एक मील दूर महान् विजेयता मान्य महाराज सुहेलदेव (सुहृद्देव) की मूर्त्ति स्थापित है। मूर्त्ति बहुत ही सुन्दर और आकर्षक है। श्वेत अश्व पर सवार महाराज हैं। सुन्दर रंगीन पगड़ी बाँधे हुए, भाला और धनुष हाथ में है। धनुष रिक्त है। उससे बाण छूट चुका है। बाण छोड़कर एक ओर को अपनी सेना को देख रहे हैं। एक ऊँचे टीले पर एक बड़े से कमरे में यह मूर्ति प्रतिष्ठित की गयी है। यह टीला कुटिला नदी के तट पर है। कुटिला नदी तीर्थ स्थान है। यहाँ मान्यवर मुनि अष्टावक्र जी ने तप किया था।

यह मसऊद सुलतान महमूद का भानजा था। उसने महमूद से सेना माँगी और कहा कि मैं तलवार के बल पर भारत के मन्दिर तोड़कर वहाँ से मूर्तिपूजा को समाप्त करूंगा। महमूद ने सहर्ष सेना दे दी। यह एक लाख बीस हजार सैनिकों को लेकर भारत में घुस आया और मंदिर तोड़ता हुआ अजमेर बदायुं, हरदोई, मनकापुर के हिन्दुओं का वध करता हुआ बहराइच आ पहुंचा। यह जाति का सैयद था। और उस सेना का सेनापति (सालार)था। अतः सैय्यद सालार कहा जाता था। महाराज सुहेलदेव (सुहृद्देव) ने इस पर दूत भेजा कि तुम हमारे देश से चले जाओ तो इसने गर्व से उत्तर दिया कि देश उसका है जिसके खड्ग में बल है। हम यहाँ शिकार करने आये हैं। तब महाराज ने युद्ध की तैयारी की। कठिनाई यह थी कि यह अपनी सेना के आगे गौवों का बहुत बड़ा समूह रखता था। इससे हिन्दू सैनिक गोवध के भय से तीर चलाने में संकोच करते थे। महाराज ने ब्राह्मणों से व्यवस्था माँगी तो ब्राह्मण ने संकल्प

लेकर कहा कि जो गौयें मारी जायेंगी उनका सब अपराध हम अपने ऊपर लेते हैं। आप निःसंकोच युद्ध करिए। फिर क्या था लाखों हिन्दू सशस्त्र होकर महाराज के झण्डे के नीचे आकर इकट्ठे हो गये। दो दिन घमासान युद्ध हुआ और सब आततायी यमपुर भेज दिये गये। कुछ थोड़े से बचे थे जो रात में भागने का विचार कर रहे थे महाराज ने कहा कि इनका भाग जाना हितकर न रहेगा। अभी रात में ही इन पर आक्रमण करके सबको समाप्त कर दिया जाए। तब सेना ने रात में ही धावा बोल दिया और सबको मार गिराया। मसऊद अपने कुत्ते को साथ लिये एक महुए के पेड़ के नीचे छिपा खड़ा था। पेड़ के चारों ओर इसने खाई खुदवा रखी थी। महाराज-सर संधान किये घोड़े पर सवार खड़े थे। रात का समय था कि इतने में सैय्यद सालार मसऊद का कुत्ता भौंक उठा। बस उसी से लक्ष समझकर शब्दवेधी बाण इस बल से मारा कि मसऊद का हृदय वेधता हुआ बाण महुए के पेड़ में जा धंसा। मसऊद यमलोक सिधारा कुत्ता भी मार दिया गया। अब सब शत्रुदल शून्य था। महाराज की पूर्ण विजय हुई। हिन्दुओं की आपत्ति टल गई। बहुत दिन बाद जब वहाँ मुसलमानी शासन हो गया तो बालादित्य के मन्दिर को तोड़कर उस स्थान पर बालेमियाँ के नाम से नकली समाधि बना दी गयी। और उसके साथियों रजक सैफ़ुद्दीन आदि की कब्रें भी बना दी गयीं। इन कब्रों पर तो मेला लगने लगा और अभागे मूढ़ हिन्दू मान्यताएँ माँगने लगे और सहस्त्रों रुपया भी चढ़ाने लगे, विजेता महाराज को सब भूल गये थे। केवल इतिहास में उनका नाम था। ऐतिहासिक वर्णन भी मुसलमानों द्वारा लिखा गया है। अब कुछ वर्ष हुए हिन्दुओं में जागृति हुई।

यहां के प्रतिष्ठित वकील श्री श्यामलालजी ऐडवोकेट और उनके साथी धर्मप्रिय हिन्दुओं ने महाराज सुहेलदेव (सुहृद्देव) की प्रतिमा प्रतिष्ठित कर दी है और यहाँ मेला भी लगने लगा है। श्री श्याम-

लालजी का रोम-रोम स्वधर्म प्रेम से भरा हुआ है। हिंदुत्व के गौरव पर उन्हें गर्व है। वह अच्छे वक्ता हैं और पुरातन इतिहास के पंडित भी हैं। आर्यसमाज के नेता हैं। महाराज सुहेलदेव जी प्रसिद्ध बुद्ध-भक्त महाराज प्रसेनजित के वंशज थे। और महाराज प्रसेनजित भगवान् राम के पुत्र लव की वंश परम्परा में थे और श्रावस्ती के राजा थे। सूर्यवंशी महाराज प्रसेनजित तो बुद्ध भगवान् के भक्त थे परन्तु उनकी एक रानी श्रद्धालु जैन थी और भगवान् महावीर की अनन्य भक्त। अन्ततः आगे को राजवश जैन धर्मानुयायी हो रहा। श्री महाराज सुहृद्देव भी निष्ठावान् जैन थे। जैन नरेशों में महाराज खारबेल्ल के अतिरिक्त इतना भारा वीर विजेता और कोई नहीं हुआ जैसे कि श्रीवस्ती नरेश महाराज सुहृद्देव हुए हैं।

यह स्थान जैनों के लिए तो बड़े महत्त्व का है। उन्हें भी इस स्थान को चमकाना चाहिए। जैन लोगों में धन की कमी नहीं है अतः वे चाहें तो इस स्थान को गौरवशाली, दर्शनीय तीर्थ बना सकते हैं। यहाँ की आवश्यकताएँ ये हैं—

१—कुटिला नदी पर पक्का घाट बने।

२—महाराज की मूर्ति का स्थान बढ़ाकर एक बड़ा हाल बनाया जाए जिसमें हिन्दू महापुरुषों, वीरों, धर्माचार्यों, नेताओं के चित्र लगें।

३—यहाँ का पूर्ण इतिहास जिसकी सामग्री श्री श्यामलाल जी के पास है, प्रकाशित किया जाए।

४—एक अतिथिशाला और पाठशाला बनाई जाए और पाठशाला में संस्कृत साहित्य के साथ आर्य-संस्कृति की भी शिक्षा दी जाए। जैन दर्शन और वैदिक दर्शन भी पढ़ाये जाएँ।

मेरे इस लेख को अन्य हिन्दू पत्र भी छापने की कृपा करें।

सुहृद्देवो महावीरो रघुवंशकुलोद्भवः।
रक्षिता ह्यार्यधर्मस्य दुष्टदर्पविनाशकः॥
अत्रैवाऽभिमर्दयच्छत्रून् आर्यधर्मोन्मूलकान्।
जघानैकेन बाणेन ससऊदं दुरासदम्॥
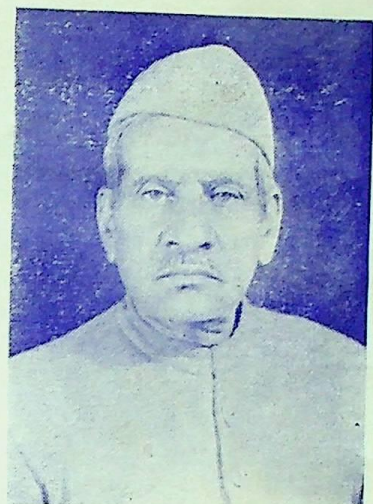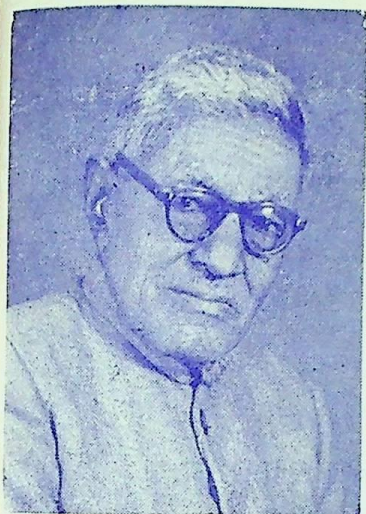
ं० श्री बिहारी लाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ

बाबू चन्द्रनारायण जी सक्सैना एडवोकेट
अभिनन्दन समिति के संयोजक

शास्त्री जी का पौत्र राजीव एवं
पं० राधेश्याम कथावाचक का प्रपौत्र सञ्जीव
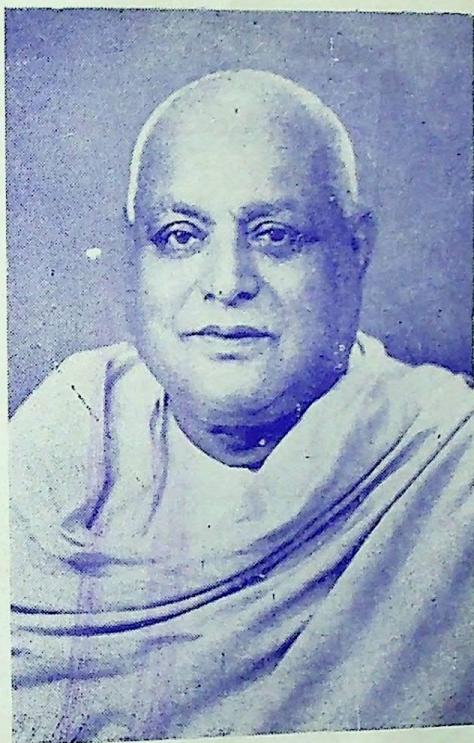
स्वर्गीय पं० राधेश्याम जी कथावाचक

पं० श्री बिहारीलाल जी शास्त्री

का आर्यसमाज, बिहारीपुर में

अभिनन्दन

पण्डित श्री बिहारीलाल जी शास्त्री आर्यसमाज के समुज्ज्वल रत्न, देदीप्यमान नक्षत्र और वैदिक सिद्धान्त पताका के दिग्विजयी नायक हैं।

शास्त्रार्थ महारथी के रूप में आपकी वाग्मिता और प्रत्युत्पन्न प्रतिभा का महत्त्व सभी विरोधियों ने स्वीकार किया है। वैदिक सिद्धान्त समर्थन और पाखण्ड-खण्डन में आपने अपने ७५ वर्षीय जीवन का सर्वोत्तम समय व्यतीत किया है। अपनी सारी शक्ति लेखनी और वाणी द्वारा प्रचार करने में लगाकर आपने अनेक नव-युवकों में मिशनरीभावना उत्पन्न कर दी, अनेकों को अपने शिष्य रूप में तय्यार कर दिया और आज भी वृद्धावस्था आपके मार्ग में बाधक नहीं बन सकी, जिधर से भी आर्यसमाज के प्रचार के लिए मांग आयी आर्यसमाज के एक सेनानी के रूप में आप उधर ही चल देते हैं।

आपके ७५ वर्षीय जीवन पर आर्यसमाज बिहारीपुर बरेली में ३ अप्रैल ६६ को आपका हार्दिक अभिनन्दन आयोजित किया है।

श्री शास्त्री जी 'मित्र'[1] परिवार के अभिन्न अंग हैं हम मित्र परिवार की ओर से इस शुभावसर पर श्री शास्त्रीजी के लिए मंगल कामनाएँ करते हैं और प्रभु से उनके दीर्घायुष्य की प्रार्थना करते हैं।

---

१. आर्यमित्र

पद्मश्री पं० हरिशंकर शर्मा सम्पादकाचार्य

प्रधान आर्य प्रतिनिधिसभा, उत्तर प्रदेश, की शुभकामना

ओ३म्

पं० श्री बिहारीलालशास्त्री के अभिनन्दन-उपलक्ष में

'शुभकामना'

विज्ञ बिहारीलाल शास्त्री, विनययुक्त वर वन्दन हैं,
आज आपका स्नेह सहित हो रहा भव्य अभिनन्दन है।

वैदिक धर्म्म-प्रचार हेतु ही, सारा जीवन लगा दिया,
अपनी वाणी और लेखनी से सोतों को जगा दिया।

हे प्रभु, हों शतायु शास्त्री जी, गुण गौरव विस्तार करें,
जन-जीवन में, धर्म्म कर्म्म श्रद्धा के शुभ सद्भाव भरें।

'शंकर सदन
आगरा

विनीत
हरिशंकर शर्मा

वाणी के धनी

व्याख्यानवाचस्पति पं० श्री बिहारीलालजी एक सुयोग्य विद्वान् तथा अच्छे वाग्मी हैं। शास्त्रार्थ में निपुण एवं वाणी के धनी हैं। आपने आर्यसमाज के लिए गौरवपूर्ण कार्य किया है। प्रभु उन्हें चिरायु दें वे शतायु बनें, जिससे महर्षि के कार्य को उनके द्वारा पूर्ण-गति प्राप्त हो। देश उनकी सेवाओं से पूर्णतया लाभान्वित हो।

—प्रतापसिंह शूरजी वल्लभदास
प्रधान सार्वदेशिक सभा, दिल्ली

आर्य विद्वान् महोपदेशक शास्त्रार्थ महारथी
पं० श्री बिहारीलालजी शास्त्री
७५वीं वर्षगाँठ पर शुभकामनाएँ

महान् उपदेशक पंडित बिहारीलाल जी काव्यतीर्थ

आर्यजगत् में पंडित श्री बिहारीलाल जी को लोग जितना मानते हैं उतना मुझको नहीं जानते। अतः उनके सम्मान के लिए मेरी साक्षी का मूल्य नहीं है, तथापि मेरे हृदय में उनके लिए जो आदर है उसका प्रकाशन मेरा कर्तव्य है। यह उचित है कि बरेली के आर्य भाई-बहन उनका अभिनन्दन कर रहे हैं। मैं पंडित श्री बिहारीलाल जी को लगभग ५० वर्ष से जानता हूं। कुछ ऐसी धुंधली-सी याद है कि पहले महायुद्ध के अवसर पर मुझे उनके दर्शन नजीबाबाद आर्यसमाज के एक उत्सव में हुए थे। वे शायद उन दिनों बरेली में रहते थे। वह पं० जी के कार्यों का आरम्भिक काल था। उनके उस समय के भाषण ओजपूर्ण होते थे। उनकी यह विशेषता दिन प्रतिदिन अधिक उज्ज्वल होती गई, और मेरा उनका सम्बन्ध भी अधिक दृढ़ होता गया। पण्डितजी के भाषण की विशेषता है "व्यावहारिक मूल्य"। जनता का हित ही उनके भाषण का उद्देश्य होता है। वह ऐसी बात नहीं कहते कि लोग प्रशंसा तो करें परन्तु समझ न सकें। वर्तमान परिस्थिति का विश्लेषण उनकी वक्तृताओं का विशेष गुण है। वे इस वृद्धावस्था में भी अपने पूर्व उत्साह को सुरक्षित रखते हैं। श्री बिहारीलालजी काव्यतीर्थ तो हैं ही, शास्त्रार्थ करने में भी दक्ष हैं, और कई पुस्तकों के रचयिता भी है। वे आयु में मुझसे बहुत छोटे हैं अतः यह अनुचित न होगा यदि मैं अभिनन्दन के साथ आशी-र्वाद को भी सोमरस में आशीः (दधि) की भाँति मिश्रित कर दूं। ईश्वर उनके भविष्य को उनके अतीत से अधिक दीप्ति प्रदान करें।

—गंगा प्रसाद उपाध्याय, इलाहाबाद

महर्षि मिशन के आदर्श प्रचारक

पं० श्री बिहारीलाल जी शास्त्री की सेवाओं से आर्यजगत् पूर्णरूपेण परिचित है। पंडित जी ने अपने सारे जीवन में शास्त्रार्थ, व्याख्यान और लेखों से आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार किया, कहना चाहिए कि सारा जीवन इस कार्य में लगाया और अब वृद्धावस्था में भी उसी प्रकार प्रचार कार्य में संलग्न हैं।

शास्त्री जी की वाणी में बल है और युक्ति एवं चातुरी में ओजस्विता है। विधर्मियों से शास्त्रार्थ करने में उनकी एक पटुता यह भी है कि वे चुटुकियों और चुटकलों पर बड़े-बड़ों को परास्त कर देते हैं। आपके भाषण में विशेष प्रभाव है।

सम्पूर्ण जीवन महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों का प्रचार करने वाले इस विद्वान् पण्डित की सेवाओं के प्रति आर्यसमाज चिर ऋणी रहेगा।

माननीय शास्त्री जी से मेरा परिचय बहुत पुराना है। वे जब भी मिलते हैं प्रसन्नता होती है और उनकी मजेदार कहानियाँ और हास्यप्रद उक्तियाँ तो हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाने की स्थिति उत्पन्न कर देती हैं। उनके कार्यों के लिए कुछ भी कहना थोड़ा है। उनका अभिनन्दन एक प्रशंसनीय आयोजन है।

—वैद्यनाथ शास्त्री
अध्यक्ष-अनुसन्धान विभाग
सार्वदेशिक सभा, देहली

तार्किक व्याख्यानवाचस्पति

आर्यसमाज के अनथक विचारक, प्रसिद्ध एवं तार्किक व्याख्यान-वाचस्पति पं० श्री बिहारीलाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ की अमूल्य सेवाओं का मूल्यांकन कठिन है।

श्रद्धेय पण्डित जी ने अपने ५० वर्ष के निरन्तर प्रचार कार्य में जहां वाणी का समुचित प्रयोग किया है वहां अपनी प्रभावशालिनी लेखनी का भी उन्होंने निरन्तर प्रयोग किया है।

पं० बिहारीलाल जी निश्चय ही एक आदर्श वैदिक मिश्नरी हैं और आर्यसमाज के प्रचारकों के प्रेरणा के एक आदर्श स्रोत हैं।

मैं पण्डितजी के दीर्घ, यशस्वी जीवन की प्रभु से कामना करता हूँ।

—शिवदयालु मुख्योपमन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा
उत्तर-प्रदेश

प्रतिभा के धनी

श्रद्धेय पं० बिहारीलाल जी शास्त्री आर्यसमाज के अहर्निश प्रचारक तथा कुशल विचारक हैं, आर्यसमाज के सिद्धान्तों तथा तत्त्वों को आप जिस विद्वत्ता, गम्भीरता तथा प्रखरता से जनता के सामने लाये हैं उससे चकित होना पड़ता है, आप वाणी तथा लेखनी दोनों के धनी हैं। आपकी तार्किक प्रतिभा के समक्ष विपक्षियों को अपने पक्ष-प्रतिपादन में मौनावलम्बन ग्रहण करना पड़ता है। ऐसे विद्वान् आर्यसमाज के गौरव तथा आदर्श के प्रतीक हैं। मैं शास्त्रीजी के दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ, जिससे कि वे आर्यसमाज की अधिकाधिकसेवा वाणी तथा साहित्यिक साधना से करने में सफल हों।

—वासुदेव
प्रधान मन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा, बिहार (पटना)

उपदेशकों के प्रकाश-स्तम्भ

श्रीमान् पं० बिहरीलाल जी शास्त्री प्राचीन ब्राह्मणों के समान निःस्पृह, त्यागी तथा तपस्वी हैं। आपने समाज में मिथ्या पाखण्ड द्वारा यश की कामना नहीं की अपितु सर्वदा मिथ्या प्रशंसा, बाहरी आडम्बर से दूर भागते रहे। सभाओं के निर्वाचन एवं पार्टीबाजी में भी इस महापुरुष ने अपने को संलग्न नहीं किया। आपके सामने केवल यही उद्देश्य रहा कि स्वामी दयानन्द सरस्वती की कल्याणी वाणी का प्रचार तथा प्रसार दिग्दिगान्तर में कैसे हो।

आप कुशल वाग्मी, तार्किक तथा शास्त्रार्थों में प्रत्युत्पन्न मति हैं। व्याख्यान द्वारा जन-मानस में गूढ़ सिद्धान्तों को, ललित भाषा के माध्यम से सरलतया प्रविष्ट कराने में ये परम प्रवीण हैं। इनमें वैदिक मिशन के प्रति श्रद्धा, अदम्य उत्साह तथा सर्वजन स्पृहणीय तपस्या है।

हम वैदिकधर्म के प्रचारक बिहार के आर्यसमाजी उनके कृतज्ञ हैं। बिहारीलाल जी बिहार के उपदेशकों के प्रकाश-स्तम्भ हैं। इन शब्दों के साथ यज्ञ की पुष्पाञ्जलि अर्पित करता हुआ परम पिता परमेश्वर से उनकी दीर्घायु की कामना करता हूँ।

त्वं जीव शरदः शतम्।

—रामानन्द शास्त्री, पटना

आर्यसमाज के स्वर्ण-रत्न

व्याख्यान-वाचस्पति, शास्त्रार्थ-महारथी श्रद्धेय पं० बिहारी लाल जी आर्यसमाज के उस स्वर्ण युग के अवशिष्ट रत्न हैं जब प्रचार के धनी अपना सर्वस्व आर्यसमाज के लिए अर्पण कर देते थे, न परिवार की चिन्ता और न कष्टों की परवाह।

आपका अध्ययन विस्तृत तथा आलोचना गम्भीर और पैनी होती है।

परमात्मा से प्रार्थना है कि आपको सुखद दीर्घायु प्रदान करें।

—डा० राजबहादुर उपप्रधान

आर्य प्रतिनिधि सभा कोटा, राजस्थान

तपस्वी और त्यागी विद्वान्

माननीय श्रद्धेय पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री ने अब तक निरन्तर आर्यसमाज की निःस्वार्थ भाव से जो सेवाएं की हैं और कर रहे हैं और सम्प्रति वृद्धावस्था होते हुए भी निरन्तर सेवा कर रहे हैं उनके लिए आर्यजगत् सदैव आपका आभारी रहेगा। माननीय शास्त्री महोदय ने सन् १९२० ई० से सन् १९२४ ई० तक जिला बिजनौर में निरन्तर वैदिक धर्म का प्रशंसनीय ओजस्वी, प्रभावशाली प्रचार कर बिजनौर की जनता को मन्त्रमुग्ध-सा बना दिया। अब तक भी आबाल वृद्ध सभी लोग आपकी भूरि-भूरि प्रसंसा करते रहते हैं।

माननीय शास्त्री जी की वक्तृत्व शक्ति का जो प्रभाव जनता पर पड़ता है उसके लिखने में लेखनी असमर्थ है। बिजनौर में रहते हुए शास्त्री जी ने बहुत-सी शुद्धियां कीं, और अनेकों परिवार ईसाई होने से बचाये।

वास्तव में शास्त्री जी के तर्क के सम्मुख ईसाई, यवन, पौराणिक आदि कोई भी नहीं ठहर सकता। आपका तर्क युक्तियुक्त तथा प्रशंसनीय है। सभी शास्त्रों के आप प्रकाण्ड विद्वान् हैं। आपकी विद्वत्ता का प्रभाव व प्रकाश सारे भारतवर्ष में छाया हुआ है।

माननीय पंडित जी वास्तव में तपस्वी और त्यागी विद्वान् हैं। आपकी निर्लोभता एवं त्याग भी आर्य महानुभावों से छिपा नहीं है। पीछे कई वर्ष हुए जब आप बहुत रुग्ण हो गये थे, उस समय आपके यहां एक बड़ी चोरी भी हो गई थी। उस समय कुछ आर्य सज्जनों ने आपको सहयोग देना चाहा, परन्तु आप तो सच्चे ब्राह्मण हैं, आपने उस समय किसी का भी सहयोग लेना स्वीकार नहीं किया, इसी से आपकी उदारता और निर्लोभता जानी जाती है। पण्डित जी महाराज के मुखारविन्द से हर समय गम्भीरतापूर्वक शास्त्रीय मनो-रंजन होता ही रहता है।

ऐसे जगत् प्रसिद्ध विद्वान् के गुणों का वर्णन करना असम्भव नहीं तो कठिन जरूर है ।

कर-लेखनी असमर्थ है, असमर्थ हैं मन भी तथा ।
जो लिख सके श्रीमान् के गुणगान की अविरल कथा ॥

परम प्रभु परमात्मा से प्रार्थना है कि सम्मानित शास्त्री महोदय को दीर्घ जीवन तथा नीरोगता प्रदान करें जिससे कि वे लम्बे जीवन तक अपनी अमृत वाणी के द्वारा वेद प्रवचन करते हुए जनता को अमृतपान कराते रहें ।

—सुखानन्द सरस्वती
कुलपति
श्री केवलानन्द निगम आश्रम
गंज, दारा नगर (बिजनौर)

आर्यसमाज के गौरव

आर्यजगत् के विख्यात विद्वान्, व्याख्यानवाचस्पति श्री बिहारी लाल शास्त्री काव्यतीर्थ ने आर्यसमाज की जो सदा सच्ची एवं सराहनीय सेवाएं की हैं वे स्वर्णाक्षरों में अंकित होने योग्य, परम प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय हैं ।

वे आर्यसमाज के गौरव हैं अतः ऐसे आदर्श महानुभाव का जितना भी सम्मान किया जाए कम है। मेरे मन में उनके प्रति अतीव आदर है । ईश्वर की दया से वे सानन्द शतायु हों, यही मंगल कामना है ।

—रणञ्जय सिंह, संसद सदस्य
भू० पू० प्रधान आ० प्र० नि० सभा उ० प्र०

श्रद्धा-प्रकाश

श्रद्धेय महाविद्वान् सर्वशास्त्र निष्णात पं० श्री बिहारीलालजी शास्त्री को मैं व्यक्तिगत रूप से अनुमानतः ३५ वर्ष से जानता हूँ। वैदिक धर्म, आर्यसमाज और भारतीय राष्ट्र के प्रति श्री शास्त्रीजी का कार्य=योगदान बहुत उच्च स्थान से सम्बद्ध है। आपने निर्धनता को सहन किया, परन्तु धर्म-धन को कभी हाथ से नहीं जाने दिया। रुग्ण होते हुए भी वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार और प्रसार में स्वस्थ वृत्ति से सदा अग्रसर रहे। परमात्मा आपको दीर्घायु देवे, जिससे हम आपकी कर्तव्य निष्ठा से लाभान्वित होते रहें।

—जगदेव सिंह सिद्धान्ती
भूतपूर्व सदस्य लोकसभा

जुग-जुग जीएँ

जुग-जुग जीएँ जगत् में,
पूज्य बिहारीलाल।
वैदिकधर्म प्रचार में,
सत्यनिष्ठ सब काल॥
वाणी-भूषण ओजमय,
वाचस्पतिर्महान्।
आर्यजगत् नभ में सदा,
चमकें "सूर्य" समान॥

—डा० सूर्यदेव शर्मा एम० ए० डी-लिट्
मन्त्री, भा० व० आर्य विद्यापरिषद्,
अजमेर

शास्त्रीजी की अविस्मरणीय सेवाएं

प्रसिद्ध वाग्मी श्रीमान् पंडित बिहारीलालजी शास्त्री ने आर्य-जगत् की अपनी लेखनी तथा वाणी द्वारा जो सेवा की है वह निःसंदेह नवीन पीढ़ी के लिए अनुकरणीय है। पंडितजी के साथ मेरा सम्पर्क सन् १९२३ से है जब हम दोनों एक साथ जबलपुर काव्यतीर्थ की मध्यमा परीक्षा देने गये थे। पंडितजी के समान सरल, उद्भट विद्वान् तथा कर्मकाण्डी कुछ थोड़े-से और उपदेशक भी हो जाते तो आर्य-समाज का कार्य बहुत अधिक चमक उठता। पंडितजी की सेवाएँ आर्यसमाज के क्षेत्र में अविस्मरणीय रहेंगी।

—मुंशीराम शर्मा
संचालक
वैदिक शोध संस्थान,
कानपुर

आर्य सिद्धान्तों के पूर्ण मर्मज्ञ

पं० बिहारीलालजी काव्यतीर्थ की ७५वीं वर्षगांठ पर मैं उन्हें हार्दिक बधाई देता हूँ। वे आर्यसमाज के उस युग के कार्यकर्ता हैं जब आर्यसमाज का प्रत्येक सदस्य अपने-आपको आर्यमिशनरी समझता था। उठते-बैठते जिन्हें एक ही धुन रहती थी और वह धुन थी—आर्य धर्म प्रचार की। उन्हें आप आर्यमुसाफिर कहिए अथवा मार्गो-पदेशक कह लीजिए। वे आर्य सिद्धान्तों के पूर्ण मर्मज्ञ हैं। साथ ही पौराणिक मत, ईसाई मत, जैन मत तथा मुसलमानी मत के ग्रन्थों का उन्होंने अच्छा मंथन किया है। वे उत्तम वक्ता, व्याख्यानवाचस्पति और शास्त्रार्थ-महारथी हैं। उनके बोलने में उतार-चढ़ाव है, जो एक अच्छे वक्ता के बोलने में होना चाहिए। साथ-ही वे विनोदप्रिय= विनोदी स्वभाव हैं। उनकी वाणी तथा कलम में ओज है। सुलेखक भी हैं। बहुत दिन हुए मैं बहुत प्रभावित हुआ जब पंडितजी ने एक विवाह संस्कार में वरवधू को गृहस्थ के कर्तव्य और आचरणों के

प्रति अपने विनोदी स्वभाव से उन्हें सजग किया। पं० बिहारीलालजी बड़े निर्भीक व्यक्ति हैं लश्कर समाज के उत्सव में एक बार एक चीफ मिनिस्टर को जो किसी समय एक आर्यसमाज के मन्त्री भी रह चुके थे ऋषि दयानन्द के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए निमंत्रित किया गया। श्रद्धांजलि के साथ उन्होंने आर्यसमाज पर भी कई कटाक्ष कर दिये, इसके ठीक पश्चात् ही पं० बिहारीलालजी को बोलना था। पंडितजी ने अपने विनोदपूर्ण भाषण में मिनिस्टर महोदय की समालोचना की, उससे जनता को हार्दिक सन्तोष और प्रसन्नता हुई, किन्तु मिनिस्टर महोदय अपनी खीज न छुपा सके।

मैं पंडित बिहारीलालजी को बधाई देता हुआ उनके शतायु होने की मंगल कामना करता हूँ। वे आर्यसमाज के गौरव हैं।

—डा० महावीर सिंह
प्रधान आर्यसमाज लश्कर, ग्वालियर
तथा प्रधान आ० प्र० सभा, मध्य भारत

आर्य-उपदेशक मण्डली के आदर्श

आर्य महोपदेशक, शास्त्रार्थ महारथी श्रद्धेय पं० श्री बिहारीलाल जी शास्त्री के उपदेश तथा तर्कपूर्ण शंकासमाधान श्रवण करने का लगभग अर्द्धशताब्दी से सौभाग्य प्राप्त होता चला आ रहा है। महर्षि दयानन्द प्रतिपादित वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार पंडितजी के जीवन का मुख्य उद्देश्य रहा है। उनके असीमित स्वाध्याय, सादा जीवन, कुशल लेखन शैली, मान-अपमान से वैराग्य, अथक परिश्रम आदि गुण उपदेशक मंडली के लिए अनुकरणीय हैं। आर्यसमाज का गौरव है कि उसमें पंडितजी जैसे उच्च कोटि के विद्वान् उपस्थित हैं। सच्चिदानन्द प्रभु से प्रार्थना है कि वह पंडितजी को स्वस्थ रखें व दीर्घायु प्रदान करें जिससे आर्य जनता उनके प्रवचनों द्वारा वैदिक सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त करने में समर्थ होती रहे। उनका अभिनन्दन एक सराहनीय कार्य है।

—रामचन्द्र, बदायूँ

अनोखी सेवा

पं० बिहारीलालजी शास्त्री वस्तुतः व्याख्यानवाचास्पति तथा शास्त्रार्थ में महारथी हैं। शास्त्रीजी के सम्पर्क में आने का मुझे अनेक बार अवसर मिला। हर बार उनके प्रति श्रद्धा प्रगाढ़ होती गई। सन्देह नहीं आर्यजगत् को उन्होंने अनोखी सेवा प्रदान को जिसके लिए हम सभी उनके ऋणी रहेंगे। सौम्यमूर्ति, वाक्पटु एव विचार-शील, शास्त्रीजी आर्यसमाज की अपूर्व देन हैं। हमारी कामना है कि ईश्वर उन्हें चिरायु करे, जिससे अधिक समय तक वे मानव-मात्र क पथ-प्रदर्शन करने रहें।

—लक्ष्मीकान्त गुप्त बी० ए०
मंत्री वेदप्रचार मंडल, कोटा।

वाणीभूषण शास्त्री जी

पं० श्री बिहारीलाल शास्त्री के सम्पर्क में मैं १९३३ से आया हूँ और तभी से मैंने पंडित जी की प्रतिभा का लोहा माना है। आर्य-जगत् की आपने महान् सेवा की है, ऐसे वाणी भूषण तथा शास्त्रार्थ-महारथी के प्रति हमारा समाज सदैव ऋणी रहेगा। ईश्वर उन्हें चिरायु बनावे जिससे वे इस समाज की अधिक सेवा कर सकें।

—जियालाल वर्मा
संयोजक वेदप्रचारक मंडल, कोटा।

सर्वतोमुखी प्रतिभा

पं० श्री विहारीलाल जी शास्त्री की आर्यसमाज के क्षेत्र में की गई सेवाओं के प्रति हम सदैव कृतज्ञ रहेंगे। मान्यवर पण्डितजी की अपने किशोर काल में ही वैदिक धर्म में आस्था जम गई थी। संस्कृत में मध्यमा उत्तीर्ण करते ही इन्होंने अध्यापन और प्रचार दोनों ही कार्य प्रारम्भ कर दिये। श्री पण्डितजी कुछ काल विशुद्ध रूप से केवल प्रचार का काम भी करते रहे हैं। इस कार्य में उनकी बहुत रुचि थी। श्रद्धाविहीन सामाजिक ढाँचे को देखकर जीविकोपार्जन का आधार तो उन्होंने अध्यापन को बनाया परन्तु कार्य वास्तव में वे आर्यसमाज का ही करते रहे। रात-दिन सैद्धान्तिक ग्रन्थों को पढ़ना, उन पर भाषण देना और लेख लिखना यही उनका प्रधान कार्य रहा। स्कूल में अध्यापन करते हुए कदाचित् ही आपका कोई अव-काश का दिन इस प्रकार का रहा हो जिसका उपयोग आर्यसमाज के लिए न हुआ हो।

श्री पंडित जी की प्रतिभा चौमुखी है। वे पौराणिक कुरानी और किसी प्रत्येक से बहुत सूझ-बूझ के साथ शास्त्रार्थ कर सकते हैं और करते रहे हैं। शास्त्रार्थ समर कला में ये अद्वितीय योद्धा हैं। वादी का मुंह बन्द करने के लिए आपको अनोखी सूझती है। भाषण कला में भी पण्डितजी अपना सानी नहीं रखते। विषय को इस विचित्र ढंग से स्पष्ट करते हैं कि योग्य-से-योग्य और साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी समान रस ले सकता है। इन सब गुणों के साथ-साथ श्री पण्डितजी लोकव्यवहार में भी बहुत कुशल हैं। जहाँ कहीं रहते हैं बड़े-बड़े व्यक्ति उनका आदर करते हैं। उझानी में रहते हुए सामान्य जनता से लेकर उझानी के राजा भदवार साहब तक आपका विशेष आदर करते रहे।

शास्त्री जी जहां विद्वान् हैं वहां सच्चे ब्राह्मण भी हैं। सन्तोष

तथा त्याग भाव से कार्य करते रहे हैं। आपने बिजनौर में गांव-गाँव पैदल भ्रमण कर वैदिक धर्म का प्रचार किया। बहुत शुद्धियां कीं, बड़े-बड़े शास्त्रार्थ किये, ईसाई पादरियों के साथ बड़े शास्त्रार्थ किये। एक बार एक पादरी जहाँ-जहाँ गया उसी-उसी स्थान पर पण्डितजी भी साथ-साथ गये जहाँ पादरी बोला, "पण्डित तुम यहाँ भी आ गया।" प० बिहारीलाल जी ने कहा—"जी हाँ, जहाँ प्लेग जाएगा वहाँ हेल्थ-आफिसर भी जाएगा।" जिला बिजनौर के गांव-गांव से पण्डितजी को प्रचारशैली की आवाज सदैव गूंजती रहेगी। आपने धन-संग्रह करने की प्रवृत्ति कभी नहीं बनाई। दक्षिणा में जो भी किसी ने दे दिया, उसे देखा तक नहीं। किसी भक्त से मकान बनाने के लिए भी पैसा नहीं माँगा। बिजनौर का मकान बेचकर बरेली में मकान बनाया। आर्यजगत् सदैव पण्डितजी का ऋणी बना रहेगा। इन्हीं शब्दों के साथ मैं पण्डितजी का अभिनन्दन करता हूं।

—शिवानन्द संन्यासी

श्री पण्डितजी विद्या के भण्डार

साहित्य, व्याकरण, वैदिक सिद्धान्त सभी कुछ उनको प्राप्त और हस्तामलकवत् है, उनको सभी कुछ कण्ठस्थ है। उनसे कुछ भी पूछा जाए उसका उत्तर वह तत्काल देते हैं और सर्व प्रकार उनका दिया हुआ उत्तर सन्तोषप्रद होता है।

वैदिक सिद्धान्तों के मर्मज्ञ

प्रत्येक सिद्धान्त की गहराई तक उनकी पहुंच है उन्होंने सिद्धान्तों के मर्म को भली-भांति समझा है और बहुतों को समझाया है। किसी भी सिद्धान्त में उनकी भ्रान्ति नहीं है। ऋषि दयानन्दजी के सारे ही मन्तव्यों को युक्ति-प्रमाणपूर्वक सिद्ध करने की उनमें पूर्ण क्षमता है।

शास्त्रार्थ संगर के महारथी

बड़े-बड़े पौराणिक महारथियों को उन्होंने शास्त्रार्थों में चारों खाने चित्त मारा है। आचार्य नामधारी माधवाचार्य जैसे की बोलती बन्द करने की उनमें सामर्थ्य है और फक्कड़ों और मुँहफट्टों को भी परास्त करने के लिए वे कभी फक्कड़पन का सहारा नहीं लेते हैं। अपनी सभ्यता और अपने शिष्टाचार को हाथ से न जाने देते हुए भी इनको पूर्णरूपेण पराजित करने का श्री पण्डितजी में विशेष गुण है।

त्यागी और तपस्वी ब्राह्मण

उन्होंने धनवान बनने का कभी यत्न नहीं किया, सदा सन्तोष-धन के धनी रहे हैं, सिद्धान्त तथा गौरव को घटाकर धन प्राप्त करना श्री पंडितजी ने सदा पाप समझा है। धनियों की चापलूसी और चाटुकारिता कभी उन्होंने सीखी ही नहीं। बड़े-से-बड़े धनी का भी दुर्गण उसके समक्ष कह देने का साहस उनमें सदा रहा है। धन के लालच में उन्होंने फंसना जाना ही नहीं। धर्मानुसार जो भी आय होती है उसी पर सन्तुष्ट रहना उनका स्वभाव है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वे सच्चे ब्राह्मण हैं।

पक्के सिद्धान्तवादी

उनका जन्म ब्राह्मण वंश में हुआ है और गुण-कर्म-स्वभाव से वे पूरे ब्राह्मण हैं पर जो लोग ब्राह्मण वंश में नहीं जन्मे उनके उत्तम गुण कर्म स्वभावों का पण्डितजी सदा सम्मान करते हैं। मुसलमानों में जन्मे अनेक युवकों को शुद्ध करके पण्डितजो ने अपने पुत्रों की भाँति अपने घर में रखकर उनको योग्य बनाया है। हरिजन कहलाने वालों को पण्डितजो ने बिना भेद-भाव के सदा छाती से लगाया है। ऋषि दयानन्दजो के सारे मन्तव्यों पर उनकी सदा पूरी आस्था रही है। किसी भी सिद्धान्त पर वे कभी डगमगाये और लड़खड़ाये नहीं हैं।

सिद्धान्तों पर सदा अडिग रहकर उनके लिए अड़ने और उनपर लड़ने को सदा तैयार रहे हैं।

धर्मवीर

धर्म की रक्षा के लिए सर्व प्रकार के तप, त्याग और बलिदान को वे सदा तैयार रहते हैं। धर्म-कार्य में मृत्यु तक से उनको कभी भय नहीं लगता है। धर्म मार्ग से न उनको लोभ हटा सकता है न भय।

उद्भट व्याख्याता

उनकी व्याख्यान देने की शैली बहुत ही उत्तम है। उनकी कही हर बात श्रोताओं के हृदयों और मस्तिष्कों में बैठती जाती है और अद्भुत प्रभाव डालती है। उनको हम लोग वाणीभूषण कहा करते थे और अब मैं उनको व्याख्यानवाचस्पति कहता तथा मानता हूँ।

श्री पण्डितजी में गुण बहुत हैं उन सबका वर्णन करना कठिन है। मैं थोड़े से शब्दों के साथ उनके चरणों में श्रद्धांजलि अर्पण करता हूँ।

—**अमरसिंह आर्यपथिक**
सम्पादक वेद-पथ
आचार्य वेद विद्यालय

एक अद्वितीय व्यक्तित्व

पूज्य पण्डित श्री बिहारी लाल शास्त्री मेरे सम्बन्धी हैं। वे मेरे माननीय समधी के समधी हैं। समधी का अर्थ है समान बुद्धिवाला; पर 'कहां राजा भोज और कहां गंगुआ तेली' वाली बात, उनमें और मुझमें आकाश पाताल का अन्तर है। मैंने शास्त्री जी को बहुत कुछ पास से देखा है। मैंने उनमें बहुत से महत्त्वपूर्ण गुणों का समावेश पाया है।

सबसे प्रथम वे एक सच्चे ब्राह्मण की भांति त्यागी व्यक्ति हैं, वे निर्लोभी हैं। लोभी व्यक्ति धनियों का मुख जोहता है। ये बड़े-से-

बड़े व्यक्तियों को भी उनकी गलती पर फटकार देते हैं। ऐसा निःस्पृह व्यक्ति ही कर सकता है; परन्तु उनकी फटकार शक्कर मिश्रित औषध की तरह होती है। प्रायः देखा जाता है कि उपदेशक कहीं व्याख्यान देने जाने में प्रथम ही दक्षिणा ठहरा लेते हैं, झगड़ते भी हैं; परन्तु यहां ऐसी बात नहीं। सिद्धान्त प्रचार के सम्मुख धन तुच्छाति-तुच्छ है। जिसने इस कार्य में उन्हें जो कुछ भेंट किया, बिना देखे रख लिया। प्रायः मना ही किया। ऐसे त्यागी ब्राह्मण बहुत कम देखे जाते हैं।

मुझे बड़ा आश्चर्य तब होता है कि जब मैं इस ७९ वर्ष की आयु में भी आपकी अध्ययनशीलता देखता हूँ। प्रायः इस आयु में **'मतिर्न स्फुरति क्वापि'** वाली दशा हो जाती है। यहाँ इसके विपरीत स्थिति है। मैं जब-जब श्रीचरणों के दर्शनार्थ गया, अध्ययन करते हो पाया। कभी किसी वेद मन्त्र पर विचार कर रहे हैं, कभी कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र पढ़ रहे हैं कभी शतपथ ब्राह्मण का अध्ययन कर रहे हैं तो कभी कुरान की आयतों पर विचार कर रहे हैं। विशेष बात यह कि इससे उनके अतिथि सत्कार में बाधा नहीं पड़ती है। वे मनोरंजन के साथ सिद्धान्त की बातें करते हुए गृहागत अथवा संपर्क में आये हुए व्यक्ति को सरलता से बोध कराने में अद्वितीय हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि कोई भी व्यक्ति उनके साथ से ऊबता ही नहीं।

आपकी स्मरण शक्ति भी अद्वितीय है। इस ७९ वर्ष की आयु में भी किसी भी प्रकार को न्यूनता नहीं है। कहीं का प्रसंग छेड़िए, वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, दर्शनों, पुराण, कुरान, बाइबिलादि सम्बन्धी, वहीं की सारी बातें आपसे सुन लीजिए। आश्चर्य होता है उनकी स्मरण शक्ति पर।

आपका व्यक्तिगत जीवन भी बड़ा पवित्र है। नित्य प्रति प्रातः घर पर सन्ध्या एवं हवन करते हैं। मैं जब-जब प्रातः घर गया तो आपको ये ही दैनिककृत्य करते हुए देखा। बाहर यात्रा में भी जहाँ

कहीं प्रातः अथवा सायं समय होता है तो वहीं किसी भी स्थिति में गायत्री का जाप कर लेते हैं। गृह का वातावरण भी बड़ा निश्छल एवं सुखद है।

मैंने सबसे प्रथम बदायूं में जगत्प्याऊ के उद्घाटन के अवसर पर आपका भाषण सुना था। उस समय मैं बालक था, अधिक न समझ पाया था, परन्तु स्थानीय श्रोतागण आपके भाषण की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे। फिर **'ज्यों-ज्यों देखिए नेरे ह्वै नयनन त्यों-त्यों खरी निकसे-सी निकाई'** की तरह ज्यों-ज्यों आपके समीप आता गया, मुझे महान्-से-महान् प्रतीत होते गये।

इन विशेषताओं के साथ एक बड़ी विशेषता है आपका 'प्रत्युत्पन्नमतित्व' जो संसार में विरले हो व्यक्तियों में देखी जाती है। संसार के किसी भी मतावलम्बी में यह सामर्थ्य नहीं कि वह आपसे शास्त्रार्थ कर सके। मैंने जीवन में एक बार ही आपसे अन्य मतावलम्बी का शास्त्रार्थ बरेली अनाथालय में देखा था। उसे कुछ भी उत्तर देते न बन पड़ा। अन्त में 'मुझे नमाज पढ़ने जाना है, नमाज का वक्त हो गया' कहकर वहाँ से चलते बना।

आपका व्याख्यान ऐसा रोचक होता है कि इच्छा होती है सुनते ही रहें; ऐसा प्रभावशाली होता है कि अन्य मतावलम्बी, विरोधी भी सुनकर झूम उठते हैं। कहने लगते हैं कि बात तो ठीक कहते हैं; परन्तु जो उनमें मज़हबी चश्मा चढ़ाये होते हैं, वे किसी भी सच्ची-से-सच्ची बात को भी मानने को तैयार नहीं होते। वास्तव में वह मज़हब ही निकृष्ट है जो सच्ची बात को सत्य स्वीकार नहीं करता।

आपने आर्य सिद्धान्तों के प्रचार में अपना जीवन लगा दिया। जहाँ आर्यसमाजों की स्थापना में कठिनता थी, वहाँ पर भी आर्यसमाज की स्थापना करके अपनी अद्भुत योग्यता का परिचय दिया। सैंकड़ों शुद्धियां की, हजारों, नहीं, नहीं लाखों व्यक्तियों के हृदयों को वैदिक धर्म की ज्योति से प्रकाशित किया, न जाने कितनों को पतित

होने से बचाया ।

आज भी आप में जवानी की तड़प है । यह तड़प सिद्धान्तों की है, यह तड़प आर्य सिद्धान्त के प्रचार की भावना के कारण है ।

संक्षेप में एक सच्चे ब्राह्मण में जो गुण होने चाहिएं वे सभी गुण आपमें हैं । आपमें लोभाभाव, अध्ययनशीलता, स्मरण-शक्ति, विशेष व्यक्तित्व, अद्भुत प्रतिभा, किसी भी मतावलम्बी से शास्त्रार्थ करने की क्षमता, लोकोपकार की भावना आदि अनेक ऐसे गुण हैं जो अन्यत्र एक व्यक्ति में दुर्लभ हैं ।

मैं ऐसे महान् व्यक्ति के गुणों का क्या वर्णन कर सकता हूं । मैंने जो कुछ लिखा है दिग्दर्शन मात्र है । मैं केवल नतमस्तक हुआ श्रीचरणों में श्रद्धाञ्जलि ही अर्पित करता हूं । साथ ही मैं परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि हमारे पूज्य पंडित श्री बिहारीलाल जी को दीर्घायु करे, ताकि ऐसे महाविद्वान् पुरुष की छत्रछाया में हम सबका कल्याण होता रहे ।

—रामप्रसाद उपाध्याय शास्त्री, साहित्यरत्न, एम. ए.
प्रवक्ता-इन्टर कालिज, फरीदपुर (बरेली)

पं० श्री बिहारीलाल जी शास्त्री

पं० श्री बिहारीलाल शास्त्री, काव्यतीर्थ आर्यसमाज के उन प्रसिद्ध विद्वानों में हैं, जिन पर आर्यसमाज को गर्व है । आपका समस्त जीवन वैदिक संस्कृति और वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार में ही व्यतीत हुआ है। आपके व्याख्यान-वैदिक धर्म की महत्ता पर ही होते हैं। ऋषि दयानन्द का गुणगान करना आप अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते हैं। आपने अपने जीवन में आर्यसमाज की ओर से पौराणिकों और विधर्मियों से सैकड़ों शास्त्रार्थ किये हैं और उन्हें शास्त्रार्थ में चारों कोने चित्त पछाड़ा है। आपकी तर्कशैली अद्भुत है । आपकी सूझ अनोखी है। आपकी विद्वत्ता अनुपम है।

विधर्मी और पौराणिक आपका नाम सुनते ही कतराते हैं। आर्य-समाज के उत्सवों पर आपके व्याख्यान सुनने के लिए जनता उत्सुक रहती है। पुराने वक्ताओं में आपका प्रमुख स्थान है। परमपिता परमात्मा श्री पंडितजी को चिरायु करे, जिससे वे अभी वैदिक धर्म का प्रचार अनवरत करते रहें। आपने अपनी वाणी और लेखनी दोनों से ही आर्यसमाज के मस्तक को ऊँचा उठाया है।

निर्मलचन्द्र राठी
अधिष्ठाता आर्य भास्कर प्रेस

फोन नं० २२४७८
तार का पता—प्रो० कौंसिल लखनऊ
सरकारी मुहर सभापति
विधान परिषद्, उत्तर प्रदेश
७ विधान सभा मार्ग, लखनऊ
मार्च २४,१९६६

प्रिय चन्द्रनारायण जी

पं० बिहारीलाल शास्त्री काव्यतीर्थ देश के गण्यमान्य व्यक्तियों में से हैं। जिन्होंने आर्यसमाज के उच्चादर्शों के प्रचार में प्रशंसनीय सेवा की है। मुझे प्रसन्नता है कि बरेली का आर्यसमाज उनका अभिनन्दन कर रहा है। और उस अवसर पर मेरे साथी श्री मदन-मोहन वर्मा अध्यक्ष विधानसभा पहुँच रहे हैं। मैं इस अभिनन्दन समारोह की पूर्ण सफलता के साथ पं० बिहारीलाल की दीर्घायु की भगवान् से कामना करता हूं।

भवदीय
हस्ताक्षर
दरबारीलाल शर्मा

श्री चन्द्रनारायण एडवोकेट
प्रधान आर्यसमाज,
बिहारीपुर बरेली,

चित्र कविका
प्रकाशचन्द्र कविरत्न

ओ३म्
प्रकाश साहित्य प्रकाशन, अजमेर
व्यवस्थापक पन्नालाल पीयूष
संगीत निपुण (ऐम. म्यु.) सिद्धान्त शास्त्री
१३ । ७ । १९६६

पं० श्री विहारीलाल जी शास्त्री, शास्त्रार्थ महारथी,
महोपदेशक के प्रति

हार्दिक श्रद्धांजलि

परम प्रसिद्ध पटु पंडित प्रभावशाली,
वाग्मी विचित्र जो विचारक विशाल है
विविध सुग्रन्थों के सृजेता वीर धीर नेता,
वेद मानसर के जो मंजुल मराल हैं
सत्य के विरोधी मिथ्यामतवाद तृणपुंज
भस्म करने को जो कराल ज्वाल माल हैं
देश के पुजारी आर्यजाति हितकारी ज्ञान,
गगन विहारी विप्र वे विहारी लाल हैं ॥१॥
करते रहे भ्रमण देश परदेश ले के
धर्म के प्रचार की उमंग अंग अंग में
देते रहे तन मन धन से सुयोग सदा
प्रिय आर्यजाति राष्ट्रोद्धार के प्रसंग में
कितने पतित पिछड़े जनों को शुद्ध किया
समुद कराके स्नान वेद ज्ञान गंग में
और लगे रंग फीके यों रंगे महर्षि जी के
अति नीके वैदिक विचार रूपी रंग में ॥२॥
कामना यही है पूर्ण स्वस्थ हों स्व प्रतिभा से
जनता के उर भद्रभाव भरते रहें
करते रहें पवित्र वेद ज्ञान का प्रकाश
असत अधर्म तमतोम हरते रहें

धरते रहें स्वकर्म पथ में चरण आर्य,
बाधा विघ्न वारिधि विशाल तरते रहें।
शत वर्ष जियें पूज्य पंडित बिहारी लाल
कोटि कराल जमदूत डरते रहें।
—**प्रकाश चन्द्र**

श्री डाक्टर हरिदत्त जी एकादश तीर्थ व्या. वे. आचार्य पी-ऐच. डी.
संस्कृत प्राध्यापक डी. ए. वी. कालेज, कानपुर

शास्त्रार्थप्रवणः परोपकरणः सद्वेदविद्याचणः
व्याख्याने निपुणो विधातृवरणो विद्वत्सभाकर्षणः
सद्वर्णाश्रयणः कृपाजलनिधिः प्रोद्दामसूर्यारुणः।
विद्वद्वर्यविहारिलालबिबुधो जीयात् सभाकारणः॥ १॥

साहित्याम्बुधिरुद्गतातुलवचः कल्याणपाथोनिधिः
मूकीभूतविपक्षपक्षदलने दम्भोलि वारांनिधिः
ज्ञानक्षीरनिधिर्दयामयदयादुग्धाब्धिरुद्दामधीः
विद्वद्वर्यविहारिलालबिबुधो जीयात् सभाशेवधिः॥ २॥

लेखा यस्य श्रुतिस्मृतिमता लेखाधियानन्ददाः।
भाषा यस्य विशेषतः खरशिरः शेषस्य दोलोद्धरा।
धर्माधर्मविवेचने सुरगुरुर्वाचः प्रभाभास्करः
विद्वद्वर्यविहारिलालबिबुधो जीयात्सभाभास्करः॥ ३॥

विद्वद् ग्रामशिखामणिः करतलाखिलसद्गुणग्रामणीः
पुण्यश्लोकमहर्षिभाषितलसत् सिद्धान्तचूड़ामणिः।
तर्के कर्कशसत्सृणिः घनघृणिः प्रज्ञाभिनन्दो घृणिः
विद्वद्वर्यविहारिलालबिबुधो जीयात् सभाधोरणीः॥ ४॥

धर्मज्ञानवनी वनीपकमहादन्तावलानां हरिः।
(दो पंक्तियां पढ़ी नहीं गयीं)
विद्वद्वर्यविहारिलालबिबुधो जीयाद् गुणानां निधिः॥ ५॥

अभिनन्दन शुभ सेवायाम्

श्रद्धेय पं० बिहारीलाल शास्त्री

(रच०—अनिरुद्ध शर्मा शेरकोटी मुख्याध्यापक जू० हा० स्कूल,)
कोतवाली जि० बिजनौर)

ऐ खुशबख्त[1] श्री बिहारीलाल !
तूने ऊँचा किया है मां का भाल[2] ॥१॥
क़ाबिले क़द्र तेरी नुकता[3] रसी,
बाइसे फ़ख़्[4] तेरी धीमी हँसी ॥२॥
क़ाबिले क़द्र है तेरा अख़लाक़[5]
हो गया जिससे शोहरये आफ़ाक़[6] ॥३॥
बात में बात करते हो पैदा,
जिससे जीइल्म[7] हो गये शैदा[8] ॥४॥
बन गया आज वाणी आभूषण,
कर दिया वक्फ़ धर्म में जीवन ॥५॥
है किया रोज़ वेद का परचार,
तेरे गुन गा रहा है सब संसार ॥६॥
तूने ठाकुर अमर[9] बनाये हैं,
लाख औसाफ़[10] खुद सिखाये हैं ॥७॥
[11]क़ाबिले रश्क तेरी गोयाई[12],
सारा आलम हुआ है शैदाई[13] ॥८॥
दूसरों की भलाई करते हो,
खूब शर[14]की सफ़ाई करते हो ॥९॥
तुझको कहते हैं लोग जादू बयां,
तेरी खूबी है आज सब पै अयां[15] ॥१०॥

---

१. भाग्यशाली २. माथा ३. सूक्ष्मदर्शिता ४. गौरव योग्य ५. आचार ६. जगद्विख्यात ७. विद्यावान् ८. आसक्त ९. ठाकुर अमरसिंहजी १०. गुण ११. स्पर्धा योग्य १२. वाक् शक्ति १३. आसक्त १४. बुराई १५. प्रगट

इल्मो फ़न को तेरी जरूरत है,
तेरा दम हमको एक नेमत[16] है ॥११॥
तू है जी इल्म और है जी होश[17],
भरती तक़रीर मुर्दों में भी जोश ॥१२॥
हैं तेरे काम क़ाबिले तक़लीद[18]
है तेरा तर्ज मूजिदे तजदीद[19] ॥१३॥
तुम पै हिन्दी जबान मरती है,
दम तेरा उर्दू आज भरती है ॥१४॥
फ़ारसी तुम प नाज़ करती है।
संस्कृत दिल निसार करती है ॥१५॥
नेकखसलत हो नेक[20] तीनत हो,
तुमअदबकी हज़ार ज़ीनत[21] हो ॥१६॥
तुझ में पाई है मैंने अक्ले सलीम[22]
दिलसे करता हूं मैं तेरी ताज़ीम[23] ॥१७॥
तेरे अहसान का हूं मैं ममनू[24],
तेरा फजलो[25]करम हो और फजूं[26] ॥१८॥
रौनके बज़्म[27] बन गया है आज,
है सआदत[28]का तूने पहना ताज ॥१९॥
तेरी मदहा[29] करूँ, ये नामुमकिन,
तुममें खूबी नहुफ्ता[30] हैं अनगिन ॥२०॥
खत्म है अब दुआ पै अपना सखुन[31],
गाऊँ कबतक तुम्हारे सारे गुन ॥२१॥
तुम शगुफ्ता[32] रहो बिहारीलाल,
औरतुमताअबद[33]रहो खुशहाल ॥२२॥

---

१६. उत्तम वस्तु १७. बुद्धिमान् १८. अनुकरणीय १९. नवीनता वा आविष्कारक २०. नेक स्वभाव २१. शोभा २२. शुद्ध बुद्धि २३. सम्मान २४. शुक्र गुजार २५. अनुग्रह २६. अधिक २७. सभा की शोभा २८. नेकी २९. प्रशंसा ३०. छुपी हुई ३१. कविता ३२. खिले हुए ३३. सदा

आस औलाद तेरी फूले फले,
गंचये[34] दिल तेरा हमेशा खिले ॥२३॥
तेरा 'शर्मा' बुलन्द[35] पाया हो,
हम पै ताहश्र[36] तेरा सांया[37] हो ॥२४॥
हम तेरा करते आज अभिनन्दन,
तेरा खुशहाल हो सदा जीवन ॥२५॥

दयानन्द के वीर सैनिक का अभिनन्दन

(ले०—श्री अमीरचन्द, प्रधान आर्यसमाज, चान्दपुर, जि० बिजनौर)

अभी उस दिन बरेली के मोती पार्क में 'आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान् श्रद्धेय पंडित बिहारीलाल जी शास्त्री का सार्वजनिक अभिनन्दन माननीय श्री मदन मोहन जी वर्मा प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा तथा अध्यक्ष विधान सभा उत्तर प्रदेश के सानिध्य में हो गया। बाबू चन्द्रनारायण जो एडवोकेट प्रधान आर्यसमाज बिहारीपुर बरेली ने सफलतापूर्वक समारोह का संचालन किया।

रात अंधियारी थी और विजली ने भी आंखें फेर ली थीं। आंख मिचौनी का खेल चल रहा था। वातावरण में गर्मी तथा भारीपन था। कभी-कभी धोखा हो जाता था कि समारोह बरेली जैसे नगर में हो रहा है या किसी अन्य स्थान पर। महर्षि स्वामी दयानन्द के प्रादुर्भाव के समय के वातावरण की याद आ गई। चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार। अपना कोई नजर नहीं आता था परन्तु ऋषि ने अपना रास्ता स्वयं टटोला। आगे बढ़े। अज्ञानता के काले बादल छिन्न-भिन्न हो गये और चहुं ओर प्रकाश-ही-प्रकाश।

ज्योंही 'पेट्रोमेक्स' की सहायता ली गयी कि विजली ने भी मित्रता का झूठा प्रदर्शन किया। समारोह में रस तथा उत्साह था,

---

३४. दिल की कली ३५. ऊंचा मर्तबा, उच्च पद ३६. प्रलय तक ३७. छाया।

सादगी, सरलता और सौजन्यता का साम्राज्य था। आर्यजगत् के जाने-माने विद्वान्, साधु और संन्यासियों के शुभ सन्देश पढ़कर सुनाये गये। कवितायें, नज्में तथा भाषण हुए। श्रद्धेय पंडित जी के चरणों में नाना प्रकार की भेंटें और श्रद्धा सुमन चढ़ाये गये। माननीय प्रधान जी के अपने ही शब्दों में कि 'इस राकेट और अणुबम के युग में इस प्रकार के अभिनन्दन कुछ महानुभावों को धर्म निरपेक्षता की आड़ में शायद कुछ अटपटे से लगें, परन्तु शीघ्र समय आएगा जब ऐसे अभिनन्दन का वास्तविक मूल्यांकन किया जाएगा। भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के पुजारियों की चहुं ओर पूजा होगी।" श्रद्धेय पंडितजी ने अन्त में अभिनन्दन समारोह के संयोजकों तथा जनता का आभार प्रदर्शन करते हुए कहा कि "मैंने इस सारे नाटक में सम्मिलित होने की स्वीकृति इस कारण दी, जिससे भारी बाधाओं और वेदनाओं को सहता हुआ भी आर्यसमाज का उपदेशक और प्रचारक समूहिक स्तर पर सुख और सान्त्वना प्राप्त कर सके और हीनता तथा दीनता की भावना से पीड़ित न होकर गर्व के साथ अपना सीना तानकर चले और अपने को सम्मानित समझे।"

पूज्य पंडितजी ७५ वर्ष के हो गये। आर्यसमाज के 'प्लेटफार्म' पर पचास वर्ष पहले भी उनके भाषणों की धाक थी।

दिन-प्रतिदिन उनके भाषणों में प्रवाह, तेजी और रवानी बढ़ती ही गई। ज्वलन्त परिस्थितियों का विश्लेषण उन की एक विशेष कला है। वे शास्त्रार्थ-महारथी हैं। उनकी चुटकियों तथा चुटकलों से विरोधियों को छठी का दूध याद आ जाता। अनथक विचारक, तार्किक और वाणी तथा लेखनी दोनों के धनी हैं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के पूर्ण रूप में प्रतिनिधि, निःस्पृह, त्यागी और तपस्वी ब्राह्मण हैं। आपको झूठे यश, सम्मान तथा आडम्बर से हमेशा घृणा रही। आपने निर्धनता तो सहन की परन्तु अन्याय से समझौता नहीं किया। धर्म धन और सन्तोष धन के पुजारी रहे। ईसाई पादरियों,

यवनों तथा पौराणिकों से सहस्रों शास्त्रार्थ किये। जीवन में सैकड़ों शुद्धियां कीं। अछूतोद्धार आपका प्रिय विषय रहा है। समाज के विघटन और कलह को रोकने का प्रयत्न करते रहे। गुण कर्मानुसार वैदिक वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मण और शूद्र दोनों ही अपने-अपने स्थान पर गौरवशाली हैं।

जीवन अध्ययन तथा अध्यापन करते हुए बीता। गम्भीर तथा पैनी आलोचना में आप अपना सानी नहीं रखते। विनोदप्रिय हैं, सोने में सुहागे की तरह। मजाक का ढंग निराला है। थोड़े-से में ही सब कुछ कह डालते हैं। वैदिक मान्यताओं के निर्भीक और निःस्वार्थ व्याख्याता हैं। आप किसी पूर्व आग्रह तथा सीमित मान्यता से नहीं घिरे हैं। न्याय-अन्याय, सत्य-असत्य का वैदिक मूल्यांकन ही आपके जीवन का लक्ष्य रहा है। आर्यसमाज के प्रचार तथा प्रसार में अपनी भरी-पूरी जवानी का एक-एक कण और क्षण होम देने वाले कलियुग के इस तपस्वी दधीचि के सामने कौन नतमस्तक नहीं होगा। इनकी वाणी और लेखनी से देश को आत्मबल मिला है। अपनी जीवन-शक्ति की एक-एक बूद राष्ट्र को अर्पण कर रहे हैं। मरने के बाद तो बहुत-से शहीद माने जाते हैं परन्तु श्रद्धेय पण्डितजी तो जिन्दा ही शहीद हैं।

जिला मुरादाबाद में जन्म लिया। उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रान्तों में भी वैदिकनाद सुनाया। समस्त रोहेल खण्ड डिवीजन आपका विशेष कार्यक्षेत्र रहा। जिला बिजनौर में आर्य उप प्रतिनिधि सभा के अन्तर्गत १९२० से १९२४ तक उपदेशक रहे। जिले के गाँव-गांव और घर-घर घूमकर वैदिक सन्देश सुनाया, वैदिक पताका फहराई। अपने सामने खड़े होकर ईंट और गारे से आर्यसमाज के भवन निर्माण कराये तथा प्रेरणा दी।

श्रद्धेय पण्डितजी के अभिनन्दन के शुभ अवसर पर मैं उनके चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करता हुआ इन के शतायु होने की

प्रभु से कामना करता हूं। उनका यह उपदेश और संदेश सदा आर्य-जगत् में गूंजता रहता है कि—

"जिन्दगी ऐसी बना,
जिन्दा रहे दिल शाद तू;
तू न हो दुनिया में तो,
दुनिया को आये याद तू।"

पण्डितजी जीवन भर अभावों से सघर्ष करते रहे, समाज में जमी हुई गन्दगी को कुरेदते रहे और बाह्य आक्रमणों से रक्षा करते रहे। अन्त में सब परीक्षणों में कुन्दन बनकर ही निकले।

"डूबो दे जो जहाजों को,
उसे तूफान कहते हैं,
जो तूफानों से टक्कर ले,
उसे इन्सान कहते हैं।"

और लीजिए उस औघड़ दानी ने भेंट में आई सम्पूर्ण धन-राशि को वेद प्रचार फण्ड के लिए सम्मानपूर्वक अध्यक्ष महोदय के चरणों में रख दिया, पल्ला झाड़ कर उठ खड़ा हुआ और खाली हाथ अपने घर लौट गया।

शतायु हों !

लेखनी कुछ तू भी उस विद्वान् का गुण गान कर।
जिसने तन मन धन लगाया वेद के प्रचार पर॥
हैं तपस्वी और त्यागी धर्म प्राणाधार हैं।
आर्य जाति का है दीपक ज्ञान का भण्डार है॥
देखकर इनकी चमकती तर्क की कृपाण को।
भाग जाते हैं विधर्मी छोड़कर मैदान को॥
इस दधीचि को कलि के कोटिशः मेरा नमन।
आ गया हूं मैं भी करने भेंट श्रद्धा के सुमन॥

कर रहे गुणगान जिसका कौन-सा वह लाल है।
हम सभी का प्राण-प्यारा वह बिहारीलाल है।।
अन्त में भगवान् से कर जोड़कर मेरी विनय।
हों शतायु और मिले सर्वत्र ही पग-पग विजय।।

— अमीचन्द गुप्त
प्रधान आर्यसमाज, चान्दपुर (बिजनौर)

।। ओ३म् ।।

परमादरणीय व्याख्यानवाचस्पति

पं० बिहारीलाल जी शास्त्री

काव्यतीर्थ, शास्त्रार्थ-महारथी,

उपप्रधान—
आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश

की सेवा में—

अभिनन्दन पत्र

मान्यवर,

आर्यसमाज को ही अपना जीवन समझने वाले एवं वैदिक विचारधारा के विस्तार हेतु अपना तन-मन-धन लगाने वाले, उत्साही कार्यकर्त्ता, सुयोग्य संचालक, निःस्वार्थ प्रचारक श्री पं० बिहारीलाल जी शास्त्री, काव्यतीर्थ को आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश के उपप्रधान पद पर सुशोभित हुआ अवलोकित कर आर्यसमाज सुभाष नगर, बरेली आपका हार्दिक अभिनन्दन करने में अपना गौरव तथा सौभाग्य समझता है। कौन नहीं जानता कि बरेली में रहकर आपने समाज के उत्थान एवं उत्सर्ग के लिए क्या-क्या किया है। वैदिक धर्म के प्रचार के लिए एवं ऋषि के सन्देश को सुदूर देशों में फैलाने के लिए

अपने प्राणों को भी सङ्कट में डालने वाले कर्मवीर, त्यागमूर्ति श्री शास्त्री जी का आर्यसमाज स्वागत करता है।

आर्य प्रचारक,

घर का मोह त्याग कर समाज के लिए प्राणों की बाजी लगाने-वाले विरले ही होते हैं। लेकिन आपने निःस्वार्थ भावना से लग्न के साथ सच्चे आर्य होकर वैदिक विचारधारा का जो प्रचार प्राणपण से किया है वह अनुकरणीय है। आपने अपनी लौह लेखनी द्वारा, ओजस्वी भाषणों द्वारा तथा अकाट्य तर्कों द्वारा एवं पुष्ट विचारों द्वारा आर्यजगत् में आर्यों पर ही नहीं अपितु विरोधियों के मन पर भी अपनी विद्वत्ता तथा वाक् चतुरता की जो छाप डाली है वह सदैव ही अमिट रहेगी। आपके बलिष्ठ विचारों में मन जीत लेने की शक्ति है। आपके प्रचार करने की शैली इतनी मनमोहक है कि सहज ही में विरोधियों के विचारों में परिवर्तन ला देती है।

ओजस्वी लेखक,

आपके लेखों में मन में उथल-पुथल मचाने की शक्ति है। लेखों द्वारा समय समय पर आपने जो आर्यों में प्रेरणा भरी है, ऋषि का सन्देश जन-जन तक पहुंचाया है, वह किसी से छिपा नहीं है। अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार को रोकने में आपके लेखों ने आश्चर्यजनक चमत्कार दिखाया है। आपके द्वारा लिखित ट्रेक्ट 'ईसाई क्यों बनते हो' ने ईसाइयों को पुनः आर्य बनने के लिए विवश कर दिया। 'सुमन संग्रह' तथा 'वेद-वाणी' जैसी सारगर्भित पुस्तकें आपकी लौह लेखनी के ही फल हैं। वेदान्त दर्शन एवं श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के भाषा-भाष्य आपकी दार्शनिकता के परिचायक हैं।

शुद्धि के वीर सेनानी,

पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा संचालित शुद्धि अन्दोलन में आपने अपूर्व भाग लिया। केवल यही नहीं अपने प्राणों को हथेली पर रखकर आप ऐसे स्थलों पर भी गये जहाँ शुद्धि की सम्भावना थी।

शुद्धि के क्षेत्र में आपका उत्साहवर्धक कार्य प्रशंसनीय है। लाखों ही अपने बन्धुओं को जो समाज की कुरीतियों के कारण अनार्य हो गये थे, सच्ची राह पर लाकर आपने आर्य बनाया।

श्रद्धेय,

आपके अकाट्य तर्कों ने विधर्मियों में भी आर्य बनने की लालसा उत्पन्न कर दी है। आपने अपने अध्ययन एवं तर्कों के बल पर ही अनेकों शास्त्रार्थों में विजय पाई और आर्यसमाज का गौरव बढ़ाया। आपने अपनी अनुपम युक्तियों से सत्य और असत्य को स्पष्ट करके भूली एवं भटकी जनता को ढोंगियों से सदैव ही सावधान किया।

पूज्यवर,

अन्त में हम आर्यसमाज सुभाषनगर, बरेली के सदस्यगण पुनः आपका स्वागत एवं अभिनन्दन करते हुए आशावान हैं कि आप भविष्य में इसी प्रकार से आर्यजगत् में वैदिक-विचारधारा को बहाते रहेंगे और अपने अनुपम कृत्यों द्वारा सदैव ही हमारा पथ-प्रदर्शन करते रहेंगे।

निर्लोभी, निर्द्वन्द्व प्रज्वलित वेद शिखा से,
शत दीपक आलोकित करते पुण्य प्रभा से।
महारथी शास्त्रार्थ के पूज्य बिहारी लाल,
अभिनन्दन हम कर रहे नत कर अपना भाल—
हमें दो चेतना॥

विनीत,
हम हैं सभी आपके
'सदस्यगण'
आर्यसमाज, सुभाषनगर, बरेली।

दिनांक ४ जून १९६१

पं० बिहारीलाल शास्त्री काव्यतीर्थ का ७५वीं साल के मौके पर

नज़रे अक़ीदत

अहले वफा के प्रान हैं, पं० बिहारीलाल।
हाँ देवता समान हैं, पं० बिहारीलाल।

ईमां की आन बान हैं, पं० बिहारीलाल।
कौमो वतन की शान है, पं० बिहारीलाल।

इन्सान भी महान् है, पं० बिहारीलाल।
बूढ़े नहीं जवान हैं, पं० बिहारीलाल।

मस्ती के कद्रदान हैं, पं० बिहारीलाल।
हस्ती पे मेहरबान हैं, पं० बिहारीलाल।

रूहे - विकार जाने - मुहब्बत बहारे - कैफ
इल्मो अदब की जान हैं, पं० बिहारीलाल।

तौक़ीर के गुलों में महक है महाल है,
इज्ज़त का गुलसितान है, पं० बिहारीलाल।

मक़बूल आम इनकी तबीयत का रंगे खाम
सरमायये जहान हैं, पं० बिहारीलाल।

तामीरे इख़्तियार इन्हीं के बयां में है,
तदबीर की जवान हैं, पं० बिहारीलाल।

इनके लबों पे ज़िक्रे हकीक़त है रातदिन,
वेदों के तर्जुमान हैं, पं० बिहारीलाल।

इन्साँनवाज़ हामिये मिल्लत रफ़ीके कौम,
इन खूबियों की जान हैं, पं० बिहारीलाल।

बोलें तो अब्र बनके दिलों पै बरस प्रड़ें,
फन्ने अदब की जान है, पं० बिहारीलाल।

हंस दें तो कहकहों की नुमायश हो सामने,
यों जिन्दगी के प्राण हैं, पं० बिहारीलाल।

गर्जें तो काँप उठें मजालिम की गर्दशें,
बेखौफियों की आन हैं, पं० बिहारीलाल।

तफ्सीरे ख्वाबे वाज है इनका हर इक उसूल,
ताबीरे इम्तिहान हैं, पं० बिहारीलाल।

दुनिया के यह शरीक तो उकबा के राहबर,
महबूबे दो जहान है, पं० बिहारीलाल।

सोज़न का इनमें जोश तो पाठक का इनमें होश,
दोनों की इक जबान हैं, पं० बिहारीलाल।

हरदम है इनके दिल पे गमे आर्यसमाज,
मजहब के पास्बान हैं, पं० बिहारीलाज।

पहिचानते हैं चन्द्र नारायण की खूबियाँ,
ऐसों के कद्रदान हैं, पं० बिहारीलाल।

तारीकिये हयात में नूरे हयात है,
राहत का शम्मेदान हैं, पं० बिहारीलाल।

तकबीर इनके फैज अमल का मआल है,
तहसीन का निशान हैं, पं० बिहारीलाल।

साया रहे हयात का सर पे तमाम उम्र,
"साक़िब" पे मेहरबान हैं, पं० बिहारीलाल।

निवेदक
किशनलाल "साकिब"
१६ जुलाई १९६६ ई०

स्वागत समारोह
आर्यसमाज, बिहारीपुर,
बरेली

स्वागत समारोह आर्यसमाज,
बिहारीपुर, बरेली
श्री पं० बिहारीलाल जी शास्त्री के अभिनन्दन में

शायर की नज़रे अक़ीदत

राहे हक में आजकल जो खिज़रे दौरे हाल हैं,
पैकरे रंगीं तबीयत हैं बुलन्द इकबाल हैं।
दौलते अखलाक से जजबात मालामाल हैं,
हक फ़कीरे कारवाँ पण्डित बिहारीलाल हैं ॥

आर्यों में उनकी हस्ती कैफ सामानी लिये,
हिन्दुओं में उनकी फ़ितरत पाक दामानी लिये।
इलमियत की रोशनी है कुदरते तहरीर में,
और है जादू बयानी का मज़ा तकरीर में।

जिन्दगी की हर अदा डूबी हुई तौक़ीर में,
नाज़ के काबिल नियाजे होश की तामीर है।
हर नजर के आईने में वक्त की तस्वीर है,
कब निगाहों से रही तनबीरे मंजिल दूर दूर।

कब सफीने से रहा अरमाने साहिल दूर दूर,
जलवए हक सामने अहसासे बातिल दूर दूर।
कुफ्र सामानी से है काशानए दिल दूर दूर,
इक कशिश है हुस्ने हक को खींचलाती है करीब।

दूर की दुनिया सिमट कर आही जाती है करीब,
नुसरते हुस्ने बयां है फूल बरसाती हुई।
साजे दिल पर सोज हस्ती की फ़ज़ा गाती हुई,
साफ गोई के लबों पर बर्क लहराती हुई।

गुलशने हस्ती में मस्ती कर्ब फर्माती हुई,
जब हँसी की मौज श्रायी गम के धब्बे धो दिये।
ज़िक्रे गम श्राया तो दिलवालों के ज़ज्बे रो दिये,
श्राप देते हैं बशरको श्रादमीयत का पयाम,
श्राप से लेते रहे इन्सां मुहब्बत का पयाम।

है लबों पर श्रापके हरदम हक़ीक़त का पयाम,
मुश्किलों में श्राप सुनते हैं मुसर्रत का पयाम।
सिलसिला ताउम्र फ़ेज़े श्राम का कायम रहे,
महफिले हस्ती में साकिन मदहवां दायम रहे।

किशनलाल साकिब
बरेली

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु

श्राचार्य विशुद्धानन्द शास्त्री एम० ए० उं झानी, बदायूँ
उपप्रधान श्रार्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश

नैयायिकों का एक पक्ष मानता है कि गुण [रूपादि] ही प्रत्यक्ष होता है, द्रव्य प्रत्यक्ष नहीं होता। इसी सिद्धान्त की छाया में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने श्रपने पूना प्रवचनों में कहा था कि "ईश्वर के गुणों का प्रत्यक्ष होता है।" मानवों तक की पूजार्हता उनके गुणों में निहित है, स्थूल शरीर में नहीं। जब ईश्वर के गुण जगत् में सर्वथा प्रत्यक्ष है, फिर श्रवतार (शरीर) धारण की कल्पना में श्राग्रह क्यों है?

इस श्रवतारवाद पर बड़े-बड़े शास्त्रार्थ हुए, श्रार्य विद्वानों के कर्कश तर्क-श्रर्क-रश्मिशरों से पौराणिकी श्रवतार-कल्पना की काली घन-घटा सदा छिन्न-भिन्न होती रही है। बदायूं में एक बार ऐसा

ही अद्भुत दर्शनीय शास्त्रार्थ पौराणिकों के महापण्डित गालि-दान-कला-कोविद पं० माधवाचार्य और आर्यजगत् के विद्वन्मूर्धन्य, पण्डित मण्डल मण्डित वाणीभूषण पं० श्री बिहारीलाल जी शास्त्री शास्त्रार्थ महारथी के बीच जनता ने देखा। जबकि परिणाम में अपनी अभद्रता की लिखित क्षमायाचना पं० माधवाचार्य ने पूज्य पण्डित जी से की थी। मेरी बाल्यावस्था थी, बाद में इस शास्त्रार्थ को मैंने पुस्तकाकृति में पढ़ा और पूज्य गुरुदेव (पं० श्री बिहारीलाल जी) के मुखारविन्द से तर्क-प्रस्तुतीकरण कौशल वर्णन सुनकर अपने श्रवणों की सार्थकता को सराहा।

लिंग (प्रतीक, पाषाणादि) और वय की पूजा प्रथा पर आर्य-समाज के प्रचार ने असह्य प्रहार किया है, परिणामतः वह समूल-हिल चुकी है। फिर प्रश्न यह है कि आर्यसमाज में गुणी विद्वानों की जैसी पूजा और सम्मान प्रतिष्ठा होनी चाहिए थी, वैसी नहीं हुई। फलतः शास्त्रार्थ प्रणाली समाप्त प्रायः है। तत्त्व विवेचन और विचार चारुता की गरिमा की गाथा भी लुप्त होने को है।

आज धर्म संस्थाओं के सदस्यों का दृष्टि कोण भी बदला हुआ है। उनकी दृष्टि अर्थ प्रधान हो चुकी है, धर्म प्रधान नहीं रही। धनी का समादर बढ़ रहा है, विद्वान् का नहीं। इसीलिए स्वर्ग और नरक के ठेकेदार पोपों ने लोहा, चाँदी और सोने की चाबियाँ धनादान क्रम से चालू कर दीं थीं। आर्यसमाज को तो यह दृष्टि बदलनी और बदलवानी ही होगी। इस वर्ष श्री तिवारी जी का सम्मान करके आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के अधिकारियों ने इस प्रवृत्ति का समारम्भ और समादर तो किया है, यह सेवा गुणों की पूजा थी। अभी आर्य विद्वानों की पूजा का प्रक्रम शेष है। एक बार अन्तरंग सभा में एक महानुभाव ने अमुक व्यक्ति के सम्मान करने वाली बात प्रस्तुत की, जिसके उत्तर में मान्यवर श्री पण्डित प्रकाशवीर जी शास्त्री ने कहा था, यदि हमें यह सम्मान प्रथा प्रच-

लित करनी है तो पूज्य पं० विहारीलाल जी शास्त्री के सम्मान से प्रारम्भ करनी चाहिए। मेरा भी यही प्रस्ताव है कि ऋषि के मिशन में ८० वर्ष देने वाले पूज्य पण्डित जी का सम्मान इस वर्ष के भावी आर्यसम्मेलन में किया जाए।

जबकि बाबू सियाराम जी एडवोकेट प्रधान थे—आर्यसमाज बदायूं में पूज्य पं० जी का निम्न काव्य रचना द्वारा सम्मान एवम् अभिनन्दन किया गया था, यहां उस काव्य कुण्डलि के कतिपय कमनीय कुसुम प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

विद्वन्मूर्धन्य पं श्री बिहारीलाल जी शास्त्रिणः हार्दिक अभिनन्दनम्।

विविधवाद-विवर्धितदुर्धरस्फुरदघौघघनावलिसंवृतः ।
श्रुतिविरोधिविचारकराहुभिर्निगलितः श्रुतिभास्कर आश्रितः ॥१॥
दुर्वृत्तदुर्वृत्तावधाय सद्यः, समाययौ काशयितुं दिवोऽपि ।
वेदस्य भानुं भुविमानवेषु, ऋषिर्दयानन्दसरस्वतीन्द्रः ॥२॥
विराजतेह्यार्य परम्पराणां दीक्षां गतो वेदसुसम्मतानाम् ।
ऋषेर्मतेनेह पवित्रितान्तः, अयं मनोहारि विहारिलालः ॥३॥
विहरते नितरामृषिसम्मते, श्रुतिपथे श्रुतिशास्त्रविचक्षणः ।
अपनयन् दुरितं विदुषांवरो दिनकरो निकरं तमसामिव ॥४॥

पापप्रणाशनपटुः प्रवरः प्रधीनाम्,
ज्ञाता समग्रविमलश्रुतिसन्निधीनाम् ।
ध्याता प्रबोधनधनोऽध्वर संविधीनाम्,
वर्यो बुधां विजयतां नु विहारिलालः ॥५॥

बाल्ये विनोदसमधीत समस्तशास्त्र—
पाण्डित्य मण्डितमतिः सुमतिर्वरेण्यः ।
तर्केऽक्षपादिव दिवः समवातरत् किम्,
जेतुं विपक्षमथ कोऽपि विहारिलालः ॥६॥

वाचां पतिर्दिविषदां तु गुरुः स्वयं किं,
कारुण्यभावपरिपूरितमानसोऽयम् ।

ध्यात्वा व्यथां विमलवेद परामुङ्खानाम्,
नृणां दधौ जनुरयं नु विहारिलालः ॥७॥

वेदानुशीलनपवित्रितवाम्प्रसारः,
पीयूषवर्षणपरो नवनीरदोऽयम् ।
ज्योत्स्नां कुहूनिशि धरन् सुर संस्कृतेर्वै,
चन्द्रोऽम्बरे किमपरो नु विहारिलालः ॥८॥

यो यौवनं न्वगमयन्निगमागमानाम्,
नक्तन्दिवा खलु विचारपरम्पराणाम् ।
आचारवानविरतं भुवि सम्प्रचारे—
सोऽयं सदा विजयतां तु विहारिलाल ॥९॥

सुप्रेम-पावन-पर-प्रतिमा प्रतीकः,
भव्यानुभावपरिभूषितशेमुषीकः ।
धेयानुराधनधनैर्धुरि धारणीयः,
संराजतां नु सुधियां हृदयासनेऽयम् ॥१०॥

चेतः प्रसीदति तरां भवतां स्मरन् वै,
संलापन प्रणयगर्भगिरा गभीरम् ।
को वा जनो न मनुतां स्वकमेव धन्यम्,
लब्ध्वा विदग्ध अघमर्षणं दर्शनन्ते ॥११॥

हर्षप्रकर्षरसवर्षणशीलशास्त्र—
पीयूषपावनसुबोधमघुप्रवाहम्,
के वा न जग्मुरलमाशुनिपीय तृप्तिम्,
वागापगा स्रुतजलं विमलं त्वदीयम् ।१२।

पस्पर्धिरे ननु निशम्य सुरा न के वा,
चन्द्रावदातशुचिहृद्य गुणावलीं ते ।
अज्ञानघोरतमसाऽन्ध हृदन्तरे तु,
भाक्षालितेन्दु सुरुचिरं समवाकिरन्तीम् ॥१३।

सूर्ये वैदिकसंस्कृतेः समुदितेऽरुद्धा विशुद्धप्रभा,
प्राचीमञ्चति काञ्चनप्रतिमया स्रोतस्विनी वैदिकी।
निद्रा मुद्रितलोचना कुमुदिनी, सद्यो विकासं गता।
घूका दूर्मतयोऽत्यजन् घुघुकृतिं लीना रजन्यां क्वचित्।१४।

बदुषां विनीत—सियाराम

हिन्दी अनुवाद—

विविध वादों से विवर्धित, दुर्धर स्फुरणशील अघसमूहों की घनावलि से घिरा हुआ, श्रुति विरोधी विचारक राहुओं के द्वारा जब वेद भास्कर निगलित हो चुका था।१।

तब दुर्वृत्त रूपी दुष्ट वृत्र वध के लिए, भू-मण्डल पर मानवों में वेद के भानु को प्रकाशित करने के लिए स्वर्ग लोक से ऋषि दयानन्द सरस्वती आये थे।२।

वेद सुसम्मत आर्य परम्पराओं में दीक्षित उन ऋषि के सिद्धांत से पवित्र अन्तःकरण वाले आर्यजनमनोहारी श्री पं० बिहारीलाल जी शास्त्री आज हमारे मध्य में विराजमान हैं।३।

श्रुति शास्त्रों में निष्णात विद्वद्वर आप, अन्धकार को नष्ट करने वाले सूर्य के सदृश दुरित को दूर करते हुए ऋषि सम्मत श्रुति पथ पर नितराम विहार करते हैं।४।

बुद्धियों की मन्दतारूपी पापों के प्रणाशन में पटु, यज्ञ-विधियों के ज्ञाता ज्ञात धन, समग्र विमल वेद कोष के ज्ञाता, विद्वद्वरेण्य पं० श्री बिहारीलाल जी सदा (प्रतिपक्षियों से) विजयश्री भूषित रहें।५।

बाल्यकाल में ही शास्त्राध्ययन से मण्डितमति होकर, विपक्ष को जीतने के लिए आप स्वर्ग से अक्षपाद् कणाद के रूप में भूपर उतरे हैं।६।

कि देव गुरु बृहस्पति ने कारुण्य भाव से पूर्ण मानस होकर विमल वेद ज्ञान से विमुख मानवों की व्यथा का ध्यान करके आपके

रूप में जन्म धारण किया है ।७।

या कि वेदानुशीलन से पूत वाणी का अमृत वर्षण करने वाले आप एक नूतन जलधर हैं अथवा अवैदिक मतों को अमावस्या निशि में देव संस्कृति की चांदनी को छिटकाता हुआ, आकाश में नवल चन्द्रोदय हुआ है ।८।

जिन्होंने भू-मण्डल पर निगमागम समस्त विचार परम्पराओं का प्रचार करने में अपने यौवन को लगा दिया ऐसे पं० बिहारी-लाल जी सदा विजयश्री प्राप्त करें ।९।

प्रेम की परम पावन प्रतीक की प्रतिमा, भव्य भावों से भूषित मतिवाले ध्येय (वेद) के आराधकों के अग्रे धारणीय आप आर्य विद्वानों के हृदयासन पर विराजें ।१०।

आपके प्रणयपूर्ण गम्भीर गिरा का श्रवण कर चित्त प्रसन्न हो जाता है। हे विदग्ध ! आपके अघमर्षण दर्शन को पाकर कौन जन स्वयं को धन्य नहीं मानता ? ।११।

प्रसाद रस के वर्षणशील शास्त्रामृत से पावन ज्ञान के मधुर प्रवाह से युक्त आपकी वाणी सरिता के विमल जल का पान करके कौन तृप्ति को प्राप्त नहीं करते ? ।१२।

अज्ञानतमसाच्छन्न हृदयों में प्रखर प्रतिभा से क्षालित इन्दु कान्ति को बिखेरती हुई चन्द्रोज्ज्वल शुचि हृदयहारी आपकी गुणा-वली को सुनकर कौन देव स्पर्धा नहीं करते ? ।१३।

वैदिक संस्कृति के सूर्य स्वरूप आपके समुदित होने पर प्राची के अंचल में स्वर्णिम कान्तिमती, विशुद्ध प्रभा मण्डित वैदिकी सरिता अब वेग से बहने लगी है, नैराश्य पंक में स्थित आलस्य से मुद्रित नयन वाली आर्यों की आशारूपी कुमुदिनी अब विकसित हो गई। अब दुर्मति उलूक (अविवेकी) कहीं जाकर रजनी में लीन हो गये हैं, और उन्होंने घूघू की कर्कश आवाज को छोड़ दिया है ।१४।